वीर प्रभु की अन्तिम वाणी

उत्तराध्ययन सूत्र गीति-काव्य में

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

(संरक्षक : अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी

उत्तराध्ययन सूत्र गीति-काव्य में

(मधुर व्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतम मुनि जी म.सा. द्वारा रचित)

सम्पादन

सम्पत राज चौधरी

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर

(संरक्षक : अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

पुस्तक :
वीर प्रभु की अन्तिम वाणी

प्रथम संस्करण : सितम्बर, 2016
द्वितीय संस्करण : जुलाई, 2019
मुद्रित प्रतियाँ : 550
मूल्य : ₹ 50/-

प्रकाशक :
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
सुबोध बॉयज उच्च माध्यमिक
स्कूल के ऊपर, बापू बाजार,
जयपुर 302003
दूरभाष : 0141—2575997
ई—मेल : sgpmandal@yahoo.in

मुद्रक :
इंडियन मैप सर्विस,
पुष्कर एस्टेट, सेक्टर 'जी' शास्त्री नगर,
जोधपुर — 342003
दूरभाष : 0291—2612874

◆ **अन्य प्राप्ति स्थान :**

श्री धीरज जी डोसी
श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ
सामायिक स्वाध्याय भवन, प्लाट नं. 2,
कुम्हार छात्रावास के सामने, नेहरू पार्क
जोधपुर—342003 (राजस्थान)
फोन : 0291-2624891,
मो. : 9462543360

श्री प्रकाशचन्द जी सालेचा
16/62, चौपासनी हाउसिंग बोर्ड
जोधपुर—342001 (राजस्थान)
मो. : 09461026279

SHRI NAVRATAN JI BHANSALI
C/o. Mahesh Electricals,
14/5, B.V.K. Ayangar Road,
BANGALURU-560053
(Karnataka)
Ph. 080-22265957,
Mob.: 09844158943

SHRI PADAMCHAND JI KOTHARI
7 B, "Satva", Opp. Shreyas
Coop. Stores, Narayan Nagar Rd.,
Shantivan, Paldi,
AHMEDABAD-380007 (Gujarat)
Mob.: 09429303088

श्री मनोज जी संचेती
आर. सी. बाफना स्वाध्याय भवन के
सामने, व्यंकटेश मन्दिर के पीछे,
गणपति नगर, **जलगाँव—425001** (महा.)
मो.: 09422591423

प्रकाशकीय

सन् 2014 में परम श्रद्धेय उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा. के सान्निध्य में मधुर व्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतम मुनि जी का जोधपुर में चातुर्मास हुआ। चातुर्मास के प्रारम्भ में उन्होंने उत्तराध्ययन सूत्र पर कुछ चिंतन प्रस्तुत किया। जोधपुर संघ के कुछ प्रबुद्ध श्रोताओं का आग्रह रहा कि मुनिश्री उत्तराध्ययन सूत्र का गीति-काव्य के रूप में प्रस्तुतिकरण करके उस पर धारावाहिक रूप में प्रवचन फरमायें। श्रोताओं की भावनाओं को आदर देकर मुनिश्री उत्तराध्ययन सूत्र को गीति-काव्य का रूप देने में संलग्न हो गये। 'जिनवाणी' पत्रिका में यह करीब दो वर्षों तक धारावाहिक रूप से प्रकाशित होता रहा। सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल ने निश्चय किया कि अब यह सम्पूर्ण रचना एक ग्रन्थ रूप में प्रकाशित हो। उत्तराध्ययन के प्रारम्भ के कुछ अध्ययन संक्षिप्त रूप में लिखे गये थे, मगर मुनिश्री ने उन अध्ययनों की विस्तृत रचना फिर से की। बाकी के अध्ययनों में अपेक्षित संशोधन और परिवर्धन कर यह ग्रन्थ अपने संशोधित रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। पुस्तक की उपादेयता में अभिवृद्धि के लिए प्रत्येक अध्ययन के साथ उसी अध्ययन की प्रमुख सूक्तियाँ मूल रूप में उनके हिन्दी अनुवाद के साथ दी गई हैं। प्रस्तुत कृति के सृजन के प्रति एवं कृपा पूर्ण अनुग्रह के लिए श्रद्धावनत हैं।

श्री सम्पत राज चौधरी ने इस काव्य-कृति के सृजन, सम्पादन एवं प्रकाशन में अपने उत्तरदायित्वों का आत्मीयभाव पूर्वक निर्वहन किया है। काव्य प्रतिभा की धनी साध्वीरत्न पद्मप्रभाजी म.सा. ने इस काव्य सृजन में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। श्री धर्मचन्दजी जैन, रजिस्ट्रार, अखिल भारतीय जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड ने भी समस्त रचना का अवलोकन करके इसे परिष्कृत करने में अपना सहयोग दिया। श्री नवरतनजी डागा ने इन गीतों के रचनाकाल से इनकी प्रसार प्रभावना में अपने श्रम का नियोजन किया। हम इन सभी के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

निवेदक

चंचलमल बच्छावत	**डॉ. धर्मचन्द जैन**	**विनयचन्द डागा**	**अशोक कुमार सेठ**
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

सम्पादकीय

भगवान महावीर की वाणी का प्रतिनिधि सूत्र 'उत्तराध्ययन सूत्र' जैन दर्शन के आध्यात्मिक क्षितिज पर एक अत्यन्त दैदीप्यमान सूर्य है। भगवान महावीर की अन्तिम वाणी के रूप में इस सूत्र की विशिष्ट मान्यता है एवं तदनुरूप जन-जन की इस पर परम श्रद्धा है। वस्तुतः उत्तराध्ययन सूत्र एक जीवन सूत्र है जिसमें लोकनीति है, सामाजिक शिष्टाचार है, अनुशासन है, तत्त्वज्ञान है, अध्यात्म है, वैराग्य है, कथाएँ और दृष्टान्त हैं। यह गूढ़ भी है और सरल भी है। इसमें अन्तर्जगत् के विश्लेषण के साथ-साथ बाह्य जगत् की रूप-रेखा भी है। इसके नियमित स्वाध्याय की परम्परा प्राचीन काल से अनवरत चली आ रही है।

जैन आगम साहित्य को परम्परा से चार भागों में विभक्त किया गया है- 1. अंग, 2. उपांग, 3. मूल और 4. छेद। भगवान की साक्षात् वाणी होने पर भी उत्तराध्ययन की गणना अंग सूत्रों में नहीं करके मूलसूत्रों अर्थात् अंगबाह्य में की गई है। उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीसवें अध्ययन की अंतिम गाथा में कहा गया है कि भगवान महावीर ने अपने निर्वाण से पूर्व अंतिम समय में पावापुरी की धर्म-सभा में इस आगम का प्रवचन किया था। इस दृष्टि से यह सूत्र जिनभाषित है, अतः अंग शास्त्र की श्रेणी में आना चाहिए, परन्तु इसकी गणना मूल सूत्रों में की गई है, जो अंगबाह्य हैं। इससे इस सम्भावना को बल मिलता है कि इसके कुछ अध्ययनों के संकलन में बहुश्रुत स्थविरों का भी योगदान रहा है, लेकिन इससे इसके महत्त्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि इसके प्रतिपाद्य विषय और उनका प्रतिपादन सर्वतोमुखी आध्यात्मिक उन्नयन में अतीव सहायक है। इस दृष्टि से इसे भगवान की देशना का नवनीत कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है। वैदिक परम्परा में जो स्थान 'गीता' का है, बौद्ध परम्परा में जो स्थान 'धम्मपद' का है, वही स्थान जैन परम्परा में 'उत्तराध्ययन सूत्र' का है।

वर्तमान में उपलब्ध उत्तराध्ययन सूत्र का पाठ भगवान महावीर के निर्वाण के करीब एक हजार वर्ष पश्चात् एकपूर्वधर आचार्य श्री देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण की वल्लभी वाचना का प्रतिफल है। उत्तराध्ययन सूत्र पर सबसे अधिक व्याख्या ग्रन्थ विभिन्न आचार्यों एवं विद्वान मनीषियों ने अनेक भाषाओं में लिखे हैं। इसके अतिरिक्त इसे हिन्दी भाषा में

काव्य रूप में ढालने के भी कई सद्प्रयास हुए हैं। आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. ने भी उत्तराध्ययन सूत्र में मूल गाथा के साथ उसकी संस्कृत छाया एवं हिन्दी में पद्यानुवाद के बाद विस्तृत व्याख्या की है। फिर भी प्रस्तुत संस्करण की विशेषता यह है कि इस सूत्र को गीति-काव्य में सर्वसाधारण के लिए रचने का यह एक नवीन प्रयोग है।

मधुर व्याख्यानी श्रद्धेय श्री गौतम मुनि जी म.सा. ने, जो इस गीति-काव्य के रचयिता हैं, महान् अध्यात्मयोगी-युगमनीषी आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा. से संवत् 2034 में जैन भागवती दीक्षा अंगीकार की। गुरुदेव ने इन्हें अमित वात्सल्य का प्रसाद देकर निरतिचार संयम-मार्ग पर चलने का बल प्रदान किया। वर्तमान में आप आचार्य हस्ती के पट्टधर आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के आज्ञानुवर्ती संत हैं। साधक जीवन में प्रवेश करते ही विद्या-अध्ययन के साथ-साथ आपकी रुचि काव्य सृजन की रही। आपने अनेक आध्यात्मिक गीतों की रचना की है, जिनका समय-समय पर प्रकाशन होता रहा है। अभी हाल ही में आपके कतिपय गीतों का प्रकाशन 'गौतम से प्रभु फरमाते' के नाम से सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल ने किया है। मुनिश्री के आध्यात्मिक गीत जन-जन में प्रिय हैं। मुनिश्री जैन दर्शन के मनीषी विद्वान् होने के साथ ही एक उत्कृष्ट कवि, मधुर गायक एवं कुशल प्रवचनकार भी हैं। सम्पूर्ण उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीस अध्ययनों को काव्यरूप में परिणत करना एक अत्यन्त श्रम-साध्य कार्य था, परन्तु उन्होंने अपनी विद्वत्ता और धैर्य से इस पवित्र कार्य को करीब दो वर्ष की अवधि में सम्पन्न कर दिया।

आशा है यह रचना उत्तराध्ययन सूत्र को सरस एवं ज्ञेय रूप प्रदान करने में एक नया आयाम प्रस्तुत करेगी। इसके छत्तीस अध्ययन आत्मकल्याण के छत्तीस सोपान हैं। आचार्य भद्रबाहु के कथन को उद्धृत करते हुए हम अपने वक्तव्य को समाप्त करते हैं-

''उत्तराध्ययन सूत्र के स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म की महान् निर्जरा करता हुआ जीव परम सम्बोधि की प्राप्ति करता है एवं क्रमशः कर्ममुक्त होकर निर्वाण पद को भी प्राप्त कर लेता है।''

सम्पत राज चौधरी

14, वरदान अपार्टमेन्ट्स,
64, इन्द्रप्रस्थ एक्सटेंशन,
दिल्ली-110092
मोबाईल : 09811042519

विषयानुक्रम

प्रकाशकीय
सम्पादकीय
मंगल कलश
उत्तराध्ययन सूत्र महिमा

क्र.स. संख्या	अध्ययन	विषय	पृष्ठ
1. 01	विनय-श्रुत	विनय का स्वरूप और महत्त्व	
2.	परीषह-प्रविभक्ति	श्रमणचर्या के परीषहों की प्ररूपणा	08
3.	चतुरंगीय	चार दुर्लभ अंगों का प्रतिपादन	15
4.	असंस्कृत	जीवन के सही दृष्टिकोण का प्रतिपादन	18
5.	अकाममरणीय	मरण के प्रकार और उनका स्वरूप- मृत्यु की कला	22
6.	क्षुल्लक-निर्ग्रन्थीय	ग्रन्थि-त्याग का निरूपण	27
7.	उरभ्रीय	रस-गृद्धि परित्याग का संदेश	30
8.	कापिलीय	लोभ-विजय का उपदेश	34
9.	नमिप्रव्रज्या	संयम में निष्कम्प एवं आत्म-एकत्व भाव	38
10.	द्रुमपत्रक	जीवन की अस्थिरता एवं अप्रमाद की देशना	44
11.	बहुश्रुत-पूजा	ज्ञान की महत्ता	50
12.	हरिकेशीय	जाति की अतात्त्विकता एवं तप का ऐश्वर्य	54
13.	चित्त-सम्भूतीय	निदान-भोग एवं योग का द्वन्द्व	60
14.	इषुकारीय	भोग विरक्ति	64
15.	सभिक्षुक	भिक्षु गुण-लक्षण	72
16.	ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान	ब्रह्मचर्य की रक्षा के नियम	76
17.	पापश्रमणीय	पापश्रमण का स्वरूप- साधुत्व का कलंक	80
18.	संजयीय	हिंसा-त्याग : अभय का मार्ग	84
19.	मृगापुत्रीय	श्रमणचर्या का दिग्दर्शन	89
20.	महानिर्ग्रन्थीय	अनाथता-सनाथता का अर्थ	99
21.	समुद्रपालीय	वध्यचोर को देख संवेग प्राप्ति - कर्म विपाक	107
22.	रथनेमीय	संयम में स्थिरीकरण	111

23.	केशि-गौतमीय	धर्म की कसौटी- प्रज्ञा : आचार समन्वय	116
24.	प्रवचन-माता	समिति-गुप्ति का निरूपण	126
25.	यज्ञीय	आत्म-यज्ञ का स्वरूप	131
26.	सामाचारी	श्रमण जीवन की पद्धति	138
27.	खलुंकीय	अविनीत शिष्य का स्वरूप	143
28.	मोक्षमार्ग-गति	मोक्षमार्ग का निरूपण	147
29.	सम्यक्त्व पराक्रम	साधना के सूत्रों का विश्लेषण	154
30.	तपोमार्ग-गति	तप का सर्वांग स्वरूप	176
31.	चरण विधि	चारित्र के अंगोपांग	180
32.	प्रमाद स्थान	प्रमाद के कारण और उनका निवारण	184
33.	कर्म-प्रकृति	कर्म विवेचन	193
34.	लेश्या अध्ययन	भावनाओं का स्वरूप दर्शन	199
35.	अनगारमार्ग-गति	भिक्षु का आचार	210
36.	जीवाजीव-विभक्ति	जीव-अजीव का परिबोध	215
	प्रशस्ति		223

परिशिष्ट

1.	ग्रन्थ की छन्द रचना के कुछ ज्ञातव्य तथ्य	227
2.	संदर्भ ग्रन्थ	229

मंगल कलश

तीर्थंकर महावीर की, महिमा अपरम्पार।
मोक्ष-मार्ग की राह दी, जग के तारणहार।।

परम पुरुष परमात्मा, तेरा नाम ललाम।
भक्ति तेरी दे रही, आनन्द आठों याम।।

अन्तिम श्री जिन वीर को, उपजा केवल ज्ञान।
समता-मैत्री से किया, तीरथ का निर्माण।।

केवलज्ञान प्रकाश में, दिया सत्य का ज्ञान।
दर्या धर्म का मूल है, इसका दिया है भान।।

जिनवाणी का श्रवण कर, तिरे अनेकों पार।
'स्वामी सुधर्मा' ने दिया, प्रभुवाणी का सार।।

अवगाहन उसमें किया, 'गज मुनि' सन्त महान्।
सूत्र-अर्थ से है किया, जिनवाणी का गान।।

गुरु के कृपा प्रसाद से, किंचित चित्त में धार।
प्रभु की वाणी को दिया, गीतों का आकार।।

'गुरु हस्ती' ने कर दिया, अन्तस में उजियार।
'मुनि गौतम' उनको करे, वंदन बारम्बार।।

उत्तराध्ययन सूत्र महिमा

निर्वाणोन्मुख 'वीर' ने, कथन किया है विशेष।
करुणामय ने है दिया, साधक को उपदेश।।

आप्त-वचन को गूँथ कर, आगम बने अनेक।
प्रभु की अन्तिम देशना, 'उत्तराध्ययन' है एक।।

उत्तराध्ययन में है भरा, सूत्र रूप में ज्ञान।
आत्म ज्ञान की राह में, चमके सूर्य समान।।

तीर्थंकर के वचन हैं, पक्षपात से हीन।
श्रद्धा मन में थिर रहे, संयम में लवलीन।।

मर्म सूत्र का जानकर, अनुभव करो सुवास।
वीतराग के कथन में, नहीं विरोधाभास।।

सूत्र-वचन आदर्श हैं, अर्थ बड़ा गम्भीर।
अवगाहन करके मिटे, जनम-जनम की पीर।।

दर्शन-ज्ञान-चारित्र का, तत्त्व ज्ञान महान्।
अनेकान्त की राह दी, मिलता अमृतदान।।

व्यापक ऐसा ज्ञान है, देश-काल के पार।
जन्म-मरण से मुक्त हों, ले जो अंगीकार।।

वीतराग का पंथ ले, मानव भव का योग।
आत्म-तत्त्व को जानले, हरता सारे रोग।।

जिनवाणी का सार है, रहना आत्म समीप।
दर्शन-ज्ञान-चारित्र का, लेकर के शुभ दीप।।

आगम का यह सार है, आतम तत्त्व निखार।
धर्म तत्त्व को जानकर, तज दे सर्व विकार।।

सुख-दुःख में समता धरे, इष्ट-अनिष्ट समान।
वीतराग पथ धार कर, साधक बने महान्।।

पाप-पंक अज्ञान-गली, निशा अविद्या घोर।
ग्रन्थ दीपक ले चले, तेज हुए चहुँ ओर।।

जग में जीव अनन्त हैं, बन्धे कर्म के बीच।
जनम-मरण के चक्र में, रहे पाप को सींच।।

पाप कर्म को छोड़कर, पुण्य कर्म पहचान।
शेष नहीं दोनों रहे, बन जाते भगवान्।।

अन्त समय में जो मिले, जिन-वचनों का योग।
संलेखन व्रत धार के, होवे देह वियोग।।

करले मन में धारणा, लेकर के विश्वास।
करुणासागर की कृपा, अन्त समय हो पास।।

उत्तराध्यन के पाठ से, उत्तम बने विचार।
जीवन में आनन्द हों, मिटते सर्व विकार।।

गीतों में वर्णन करुँ, बिन आगम अधिकार।
उठते उर में भाव हैं, करे सुधा संचार।।

'गुरु हस्ती' ने सीख दी, तजी न उसकी कार।
काव्य-गीत रचना बनी, उनके चरणपखार।।

अर्थसहयोगी

श्रावकरत्न श्री भोजराज जी-श्रीमती चेतनाजी बोथरा

का

संक्षिप्त जीवन-परिचय

श्रावकरत्न श्री भोजराजजी बोथरा अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के पीढ़ियों पूर्व के श्रावक हैं। मूल निवास भोपालगढ़ से आप महाराष्ट्र के डहाणू गाँव में आकर बस गये थे प्रतिभा सम्पन्न बोथरा जी ने सी.ए. की उपाधि प्राप्त की एवं सम्प्रति मुम्बई में निवास कर रहे हैं। आपकी धर्मसहायिका श्राविकारत्न श्रीमती चेतना जी बोथरा मुम्बई जूनियर कॉलेज में अध्यापन कार्य में वर्षों तक संलग्न रहीं, अब सेवा निवृत्त हो चुकी हैं। आप संघसेवी, धर्मनिष्ठ, अजमेर साधु सम्मेलन के प्रमुख श्रावक, परम गुरुभक्त स्व. श्री गणेशमलजी बोहरा, अजमेर की सुपुत्री हैं। आप एक अच्छी वक्ता एवं कवयित्री भी हैं। पूज्य आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा., पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा., श्रद्धेय उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा., साध्वीप्रमुखा महासती श्री तेजकँवरजी म.सा. आदि सन्तों-महासतियों के प्रति सम्पूर्ण परिवार की अगाध श्रद्धा भक्ति है। श्रीमती चेतनाजी बोथरा यह स्वीकार करती हैं कि उनकी योग्यता के विकास में पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. एवं मधुर व्याख्यानी श्री गौतममुनिजी म.सा. की प्रेरणा रही है। आप इस समय एवरशाइन नगर, चन्दन बाला मण्डल की वरिष्ठ सदस्य हैं तथा सक्रिय रूप से अपना योगदान करती हैं। गुणीजनों के गुणानुवाद में उन्हें प्रमोद का अनुभव होता है।

बोथरा दम्पती के दो सुपुत्रियाँ हैं। बड़ी सुपुत्री श्रीमती शैफाली जी एवं दामादश्री संजय जी छल्लाणी न्यूजर्सी (अमेरिका) में निवास कर रहे हैं। छोटी सुपुत्री श्रीमती रूपालीजी एवं दामाद श्री किरणजी कर्णावट पूना में निवास करते हैं।

श्री भोजराजजी एवं चेतनाजी बोथरा साधु-साध्वियों की सेवा, विहार आदि में सदैव अग्रणी रहते हैं। आपकी संघनिष्ठा एवं धर्म भावना प्रशंसनीय है। **प्रस्तुत पुस्तक 'वीरप्रभु की अन्तिम वाणी' के प्रकाशन में अपनी 50वीं विवाह वर्षगाँठ पर आपने अर्थसहयोग प्रदान कर उदारता एवं संघनिष्ठा का परिचय दिया है।** आप यशस्वी हों, आपका धर्मनिष्ठ परिवार धर्म-कार्यों में उत्तरोत्तर उन्नति करता रहे, यही शुभ मंगल मनीषा है...!

अशोक कुमार सेठ
मन्त्री, सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

प्रथम अध्ययन : विनय-श्रुत

अध्ययन-सार गीतिका

मुक्ति-पथ में प्रथम पद ही, विनय-श्रुत का बोध है,
इस विनय के आचार से ही, मान का परिशोध है।
गुरु समर्पित को मिले, तत्त्वार्थ की है पात्रता,
फिर तप-समाधि-युक्त होकर, शिष्य पाता पूज्यता।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

विनय-प्ररूपण की प्रतिज्ञा (मूल गाथा- 1)

1 संयोगमुक्त अणगार भिक्षु का, विनय-धर्म अनुक्रम से,
बोधिप्राप्ति हित श्रवण करो, अपने अन्तरतम से,
तीन लोक में विनय की महिमा, विनय-धर्म अपना-लो।

विनीत और अविनीत के लक्षण (मूल गाथाएँ- 2 एवं 3)

2 स्वीकारे जो गुरु आज्ञा को, गुरु चरणों में रहता,
विनीत वही कहलाता है जो, गुरु निर्देश समझता,
वह अविनीत जो उलटा चलता, वैसा वर्तन टाळौ।

अविनीत की परिणति (मूल गाथाएँ- 4 से 6)

3 सड़े कान की कुतिया सम, दुःशील शिष्य धकियाता,
शूकर सम जो धान्य छोड़ के, उत्पथ में रम जाता,
भ्रष्टमार्ग तज आत्म-हितैषी, विनयशीलता पालौ।

विनयाचरण के परिणाम (मूल गाथाएँ- 7 एवं 8)

4 गुरु-सेवार्थी साधक का, नहीं होता निष्कासन,
पाता है वह शील-गुणों को, करते सब अभिनन्दन,
आगम वचन अर्थ से सीखे, सारहीन को टाळौ।

अनुशासनात्मक विनय के सूत्र (मूल गाथाएँ- 9 से 14)

5 अनुशासित वचनों को सुनकर, कभी क्रोध न करना,
क्षुद्रजनों की करे न संगत, हास्य-खेल सब तजना,
विनययुक्त संयम साधक बन, अनुशासन को पालौ।

6 क्रोधावश भी झूठ न बोले, अल्पभाषी बन रहना,
यथाकाल स्वाध्याय करे नित, फिर एकाकी रमना,
अनुचित कर्म कभी न छिपाये, मिथ्या बात को टाळौ।

7 कुशल अश्व उन्मार्ग छोड़ता, पाकर एक इशारा,
शान्त गुरु को करे न क्रोधी, करके क्रोध पसारा,
उग्र गुरु को शान्त बनादे, ऐसी विनय जगा-लो।

8 बिन पूछे वह मौन रहे, झूठ कभी ना बोले,
क्रोध-भाव को निष्फल कर दे, क्षमा का अमृत घोले,
प्रियाप्रिय वचनों को सुनकर, समता भाव बढ़ा-लो।

आत्म-दमन (मूल गाथाएँ- 15 एवं 16)

9 इस-भव पर-भव यदि सुख चाहो, आत्म-दमन ही करना,
इन्द्रिय-मन को वश में करके, संयम तप में रहना,
क्यों 'पर' के बन्धन में बन्धना, आतम सत्व जगा-लो।

अनाशातना विनय के मूल मन्त्र (मूल गाथाएँ- 17 से 23)

10 हों एकान्त या जन समूह में, अपने कर्म वचन से,
गुरु आज्ञा प्रतिकूल चले नहीं, वर्तन सदा नमन से,
कैसे उठे-बैठे गुरु संग, इसका ज्ञान बढ़ा-लो।

11 एक बार या बार-बार भी, गुरुवर यदि बुलाये,
मौन रहे ना कृपाकांक्षी वह, आसन छोड़ के जाये,
स्वीकारे गुरु आदेशन को, यत्नशील बन पालौ।

12 प्रश्न पूछना हो यदि गुरु से, आसन शय्या तजकर,
उकड़ू आसन हाथ जोड़कर, पूछे शीश झुकाकर,
गुरु भी ऐसे शिष्य जनों को, जहासुयं समझा-लो।

वचन विनय (मूल गाथाएँ- 24 एवं 25)

13 सावज्जं ना निश्चयकारी, कभी न भाषा बोले,
स्व-पर-हित भी व्यर्थ न बोले, मर्म कभी न खोले,
तज करके माया को सारी, ऋजुता मन में बसा-लो।

चारित्र विनय (मूल गाथा 26)

14 राजमार्ग या शून्य गृहों में, एक अकेला मुनिवर,
नारी संग ना खड़ा रहे वो, बात करे ना जमकर,
मर्यादा में रह कर भिक्षु, ब्रह्म तेज चमका-लो।

विनीत के लिए कठोर अनुशासन भी हितकारी
(मूल गाथाएँ- 27 से 29)

15 कोमल या कटु वचनों से, गुरु अनुशासित करते,
बुरा न माने हित शिक्षा को, नम्र भाव वे रखते,
शिक्षा सुन अविनीत रूठते, हित शिक्षा अपना-लो।

गुरु के समक्ष आसन एवं यथाकाल चर्या का निर्देश

(मूल गाथाएँ- 30 एवं 31)

16 रखे न आसन गुरु से ऊँचा, बिन कारण नहीं उठे,
यथा समय भिक्षा को जाये, यथा समय ही लौटे,
कालो-काल करे हर चर्या, वो व्यवहार बना-लो।

भिक्षा-ग्रहण और आहार सेवन की विधि

(मूल गाथाएँ- 32 से 36)

17 भक्त-पान गवेषण करके, परिमित भोजन लाये,
करे नहीं याचक का लंघन, पंक्ति में ना जाये,
एक-अकेला खड़ा रहे वो, दैन्य भाव को टाळौ।

18 यतना से लें भिक्षा जो कि, पर के लिए बनाई,
चार दीवारी में रखे जो, ऊपर से हो छाई,
साधु संग आहार को लेवे, भिक्षा-कल्प निभा-लो।

19 भोजन की न करे प्रशंसा, सदा सहज मन धरना,
''अच्छा बनाया, अच्छा पकाया'', पाप वचन से बचना,
भोज सरस तो नीरस संयम, रस-गृद्धि को टाळौ।

गुरु की प्रसन्नता या अप्रसन्नता (मूल गाथाएँ- 37 से 44)

20 उत्तम अश्व को शिक्षा देकर, वाहक खुश हो जाते,
विनीत शिष्य पर अनुशासन से, गुरु भी आनन्द पाते,
अविनीत से खिन्न हैं होते, गुरु को खूब रिझा-लो।

21 गुरु शिक्षा को उलटी माने, जिसकी पाप में दृष्टि,
उसी सीख को हितकर माने, जिसकी सम्यक् दृष्टि,
गुरु मात है गुरु तात है, गुरु से नाव तिरा-लो।

22 कभी कुपित ना करे गुरु को, दोष कभी न निकाले,
कुपित हुए तो प्रिय वचनों से, उनको अपना बना-ले,
"फिर से भूल न होगी गुरुवर", हाथ जोड़ खमा-लो।

विनीत साधु को लौकिक और लोकोत्तर लाभ

(मूल गाथाएँ- 45 से 48)

23 शुद्धाचार का पालक साधक, निंदा पात्र न बनता,
विनयवान् गुरु वचनों को सुन, जीवन उनसे भरता,
नम्र शिष्य बन बिना प्रेरणा, गुरु आज्ञा में चालौ।

24 पृथ्वी सम आधार शिष्य भी, सत्कर्मी का बनता,
कीर्ति बढ़ती सद्गुण फलते, गुरु कृपा से तिरता,
विपुल ज्ञान को पाना हो तो, विनय-चरण अपना-लो।

25 गुरु कृपा से शास्त्र ज्ञान पा, निराशंक हो जाता,
शुद्धाचार-समाधि-संवर, से वह शोभा पाता,
पंच महाव्रत पालन करके, अपना तेज बढ़ा-लो।

26 देव-मनुज से पूजा जाकर, विनयवान् सरसाता,
अशुचि देह को छोड़ एक दिन, सिद्धि का पद पाता,
अथवा उच्च देव भव पाता, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

सूक्तियाँ

1. **विणए ठवेज्ज अप्पाणं, इच्छंतो हियमप्पणो।** -1/6
अपना हित चाहने वाला साधक स्वयं को विनय-धर्म में स्थिर करे।

2. **अणुसासिओ न कुप्पेज्जा।** -1/9
गुरुजनों के अनुशासन से कुपित नहीं होना चाहिए।

3. **बहुयं मा य आलवे।** -1/10
बहुत नहीं बोलना चाहिए।

4. **आहच्च चंडालियं कट्टु, न निण्हविज्ज कयाइ वि।** -1/11
साधक कभी कोई दुष्कर्म कर ले तो फिर उसे छिपाने की चेष्टा न करे।

5. **अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।**
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य।। -1/15
अपनी दुष्ट आत्मा का ही दमन करना चाहिए, क्योंकि ऐसी आत्मा को नियंत्रित करना कठिन है। अपने पर नियंत्रण रखने वाला ही इस लोक तथा परलोक में सुखी होता है।

6. **पडिणीयं च बुद्धाणं, वाया अदुव कम्मुणा।**
आवी वा जइ वा रहस्से, नेव कुज्जा कयाइ वि।। -1/17
प्रकट में अथवा एकान्त में, वाणी से अथवा कर्म से कदापि गुरुओं के प्रतिकूल आचरण नहीं करें।

7. **मुसं परिहरे भिक्खू, न य ओहारिणिं वए।**
भासा-दोसं परिहरे, मायं च वज्जए सया।। -1/24
भिक्षु असत्य का परित्याग करे, निश्चयात्मक भाषा न बोले, भाषा सम्बन्धी अन्य दोषों को भी छोड़े और माया का सदा त्याग करे।

8. **हियं तं मन्नए पण्णो, वेसं होइ असाहुणो।** -1/28

प्रज्ञावान शिष्य गुरुजनों की जिन शिक्षाओं को हितकर मानता है, दुर्जन को वे ही शिक्षाएँ बुरी लगती हैं।

9. **काले कालं समायरे।** -1/31

जो चर्या जिस समय की है, उसे उसी समय पर करें।

10. **रमए पंडिए सासं, हयं भद्दं न वाहए।** -1/37

विनीत बुद्धिमान शिष्यों को शिक्षा देता हुआ गुरु उसी प्रकार प्रसन्न होता है, जिस प्रकार उत्तम अश्व पर सवारी करता हुआ घुड़सवार।

11. **न सिया तोत्तगवेसए।** -1/40

विनीत शिष्य गुरु का छिद्रान्वेषी न हो।

12. **नच्चा नमइ मेहावी।** -1/45

बुद्धिमान ज्ञान प्राप्त कर नम्र हो जाता है।

द्वितीय अध्ययन : परीषह-प्रविभक्ति

अध्ययन-सार गीतिका

बाईस परीषह वीर कहते, भिक्षु उनको जान-ले,
आराधना के मार्ग में यदि, आये तो स्वीकार-ले।
मार्ग-च्युत ना हो कभी भी, कष्ट के दुर्भाव से,
सहन समता से करे वो, कर्म-क्षय के भाव से।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

परीषह निरूपण (सूत्र- 1 से 3)

1 निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रभु ने, जो परीषह बतलाये,
जिन्हें जानकर के भिक्षु, संयम से ना घबराये,
बार-बार उनसे परिचित हो, अविचल भाव जगा-लो।

कथन प्रतिज्ञा (मूल गाथा- 1)

2 परीषहों के इस विभाग को, काश्यप ने बतलाया,
अनुक्रम से उनको कहता हूँ, जो प्रभु ने फरमाया,
समभावों से भिक्षु सह कर, धर्म मार्ग में चालौ।

क्षुधा-परीषह (मूल गाथाएँ- 2 एवं 3)

3 क्षुधा व्याप्त होने पर भी, भिक्षु साहस दिखलाए,
फल-मूलादि छेदन-पाचन, स्वयं करे न करवाए,
कर्म-निर्जरा का हेतु है, दैन्य भाव ना पालौ।

पिपासा-परीषह (मूल गाथाएँ- 4 एवं 5)

4 तृषा से पीड़ित भिक्षु को, विपदा भी आ जाए,
प्रासुक जल ही लेना केवल, पर ना दोष लगाए,
शीतोदक स्पर्श करे नहीं, परीषह सहन करा-लो।

शीत-परीषह (मूल गाथाएँ- 6 एवं 7)

5 शीतकाल के विचरण में, होता सर्दी का पीड़न,
स्वाध्याय का समय न टाले, सोचे न अग्नि सेवन,
वीतराग उपदेश समझ कर, मर्यादा प्रतिपालौ।

उष्ण-परीषह (मूल गाथाएँ- 8 एवं 9)

6 ग्रीष्म काल की तप्त भूमि में, व्याकुल कभी बने ना,
तन शोधन की करे न इच्छा, कोई हवा करे ना,
तन को गीला करे नहीं वह, सुख की वांछा टाळौ।

दंशमशक-परीषह (मूल गाथाएँ- 10 एवं 11)

7 दंशमशक के आये उपद्रव, समभावों में रहना,
द्वेषभाव ना लाये उन पर, उनका घात न करना,
नहीं हटाये यदि पीड़ा दे, उदासीन बन चालौ।

अचेल-परीषह (मूल गाथाएँ- 12 एवं 13)

8 जीर्ण वस्त्र के होने पर यह, सोच नहीं है हितकर,
"वस्त्र-रहित हो जाऊँगा मैं", रखे भाव न डरकर,
यतिधर्म का पालन करके, भय को मन से निकालो।

अरति-परीषह (मूल गाथाएँ- 14 एवं 15)

9 विचरण करते भिक्षु को यदि, संयम नीरस लगता,
प्रज्ञाबल से खुद को मोड़े, रख कर मन में समता,
निरारम्भ-उपशांत-विरत हो, अरुचि भाव निकालो।

स्त्री-परीषह (मूल गाथाएँ- 16 एवं 17)

10 बन्धनकारी नारी जग में, भिक्षु इसको जाने,
मुक्ति-मार्ग में दल-दल सम वे, संयम दोष लगाने,
सफल बने साधुत्व उसी का, नारी संग छुड़ा-लो।

चर्या-परीषह (मूल गाथाएँ- 18 एवं 19)

11 राग-द्वेष को छोड़ के विचरे, रखे न कोई ममता,
एक जगह पर टिके नहीं वो, विचरे रखकर समता,
निर्लिप्त रहे वो गृहीजनों से, तोड़ मोह को डालो।

निषद्या-परीषह (मूल गाथाएँ- 20 एवं 21)

12 द्रव्य भाव से रहे अकेला, चपलवृत्ति का वर्जन,
त्रास नहीं दे अन्य जनों को, कष्टों से ना कंपन,
चिन्तन करले अविचल हूँ मैं, एक अकेला चालौ।

शय्या-परीषह (मूल गाथाएँ- 22 एवं 23)

13 अच्छा-बुरा उपाश्रय पाकर, हर्ष-शोक नहीं लाना,
समभावों में रहकर सोचे, अल्पकाल में जाना,
मर्यादा का भंग नहीं हो, मन में भाव बसा-लो।

आक्रोश-परीषह (मूल गाथाएँ- 24 एवं 25)

14 कोई क्रोध करे भिक्षु पर, उस पर रोष न करना,
तिरस्कार हो अपशब्दों से, मौन भाव ही रखना,
मन में नहीं बसाये उसको, बैर-भाव बिसरा-लो।

वध-परीषह (मूल गाथाएँ- 26 एवं 27)

15 पीटे जाने पर भी मुनिजन, क्रोध-द्वेष न करते,
क्षमाधर्म को श्रेष्ठ जानकर, प्रतिशोध को हरते,
मारपीट से जीव न मरता, चिंतन यही धरा-लो।

याचना-परीषह (मूल गाथाएँ- 28 एवं 29)

16 सरल नहीं आहार को लेने, अपने हाथ फैलाना,
वस्त्रादि लेने के खातिर, नित्य द्वार पर जाना,
''इससे तो गृहवास ही अच्छा'', ऐसे भाव हटा-लो।

अलाभ-परीषह (मूल गाथाएँ- 30 एवं 31)

17 भक्त-पान यदि मिले नहीं तो, खेद कभी ना करना,
''आज नहीं तो कल मिल जाए'', ऐसा चिन्तन धरना,
ऐसी सोच से दुःख ना होता, मन को शान्त बना-लो।

रोग-परीषह (मूल गाथाएँ- 32 एवं 33)

18 ''कर्मोदय से रोग सताते'', सोच दीनता तजना,
व्याधि से न विचलित होना, प्रज्ञा को थिर रखना,
निरवद्य चिकित्सा भिक्षु कल्प है, ये आदर्श निभा-लो।

तृण-स्पर्श-परीषह (मूल गाथाएँ- 34 एवं 35)

19 रूक्ष शरीर अचेलक मुनि को, मिलता घास बिछौना,
तीव्र चुभन का कारण होता, उनका उस पर सोना,
पीड़ित होकर वस्त्र नहीं ले, परीषह यही निभा-लो।

मल-परीषह (मूल गाथाएँ- 36 एवं 37)

20 मैल-पसीना आने पर भी, सुख विलाप न करना,
हर्षित मन से देह रहे तक, मैल बदन पर धरना,
कर्म-निर्जरा का कारण है, समभावों से पालौ।

सत्कार-पुरस्कार-परीषह (मूल गाथाएँ- 38 एवं 39)

21 अभिवादन-सत्कार की कोई, इच्छा कभी न करते,
दूजों का सत्कार देख कर, ईर्ष्या भी ना रखते,
देख सरस आहार अन्य का, रस गृद्धि को टाळौ।

प्रज्ञा-परीषह (मूल गाथाएँ- 40 एवं 41)

22 ''निश्चय मैंने कर्म किये हैं, ज्ञानावरणी दुःखकारी'',
''इसीलिए नहीं दे सकता हूँ, उत्तर ज्ञानाधारी',
कर्म विपाक समझ कर भिक्षु, मन आश्वस्त करा-लो।

अज्ञान-परीषह (मूल गाथाएँ- 42 एवं 43)

23 ''व्यर्थ हुआ मैथुन से निवृत, व्यर्थ बना व्रतधारी'',
''नही जाना प्रत्यक्ष में मैंने, धर्म अशुभ-शुभकारी'',
''व्रत से मम अज्ञान मिटा नही'', ऐसा चिन्तन टाळौ।

दर्शन-परीषह (मूल गाथाएँ- 44 एवं 45)

24 ''निश्चित ही परलोक नहीं है, ना तपसी की ऋद्धि'',
''हुए न होंगे कोई जिन भी, ना उनकी कोई सिद्धि'',
''धर्मनाम पर ठगा गया हूँ'', चिंतन अभी हटा-लो।

उपसंहार (मूल गाथा- 46)

25 दुःख सहने को परीषह सारे, वीर प्रभु ने बतलाये,
मिले कभी तो भिक्षु उनसे, नहीं पराभव पाये,
परीषहजयी बने सब भिक्षु, साधु-धर्म निभा-लो।

सूक्तियाँ

1. **अदीणमणसो चरे।** -2/3

   भिक्षु दीनता रहित होकर संयम-मार्ग में विचरण करे।

2. **नाइवेलं मुणी गच्छे।** -2/6

   मुनि मर्यादा का उल्लंघन करके नहीं जाये।

3. **नागो संगामसीसे वा, सूरो अभिहणे परं।** -2/10

   मुनि परीषहों के आक्रमण की परवाह न करते हुए राग-द्वेष रूपी अन्तरंग शत्रुओं का हनन करे।

4. **सरिसो होई बालाणं, तम्हा भिक्खू न संजले।** -2/24

   क्रोध करने से भिक्षु अज्ञानियों के सदृश हो जाता है।

5. **सोच्चाणं फरुसा भासा, दारुणा गामकंटगा।**
   तुसिणिओ उवेहेज्जा, न ताओ मणसीकरे।। -2/25

   कोई कठोर और असह्य भाषा बोले तो भी मुनि उसका प्रतिवाद न करके मौन रखे, उसके प्रति उपेक्षा रखे।

6. **तितिक्खं परमं नच्चा।** -2/26

   क्षमा को साधना का परम अंग जानो।

7. **लद्धे पिण्डे अलद्धे वा नाणुतप्पेज्ज संजए।** -2/30

   गृहस्थों से आहार मिलने पर या न मिलने पर विवेकशील साधु खेद न करे।

8. **नच्चा उप्पइयं दुक्खं, वेयणाए दुहट्टिए।**
अदीणो थावए पन्नं, पुट्ठो तत्थऽहियासए।। -2/32

रोग के दुःख को कर्मों के उदय से उत्पन्न हुआ जानकर दीनता रहित होकर अपनी प्रज्ञा को स्थिर कर समभाव से सहन करो।

9. **अह पच्छा उइज्जन्ति कम्माणाणफला कडा।** -2/41

अज्ञान रूप फल देने वाले पूर्वकृत कर्म परिपक्व होने पर उदय में आते हैं।

तृतीय अध्ययन :चतुरंगीय

अध्ययन-सार गीतिका

परम दुर्लभ अंग मिलते, पुण्य की हो प्रबलता,
मनुज भव और धर्म सुनना, श्रद्धा, संयम-वीरता।
सरल बनकर के अहिंसा, की करे आराधना,
कर्म-क्षय करके करे वो, दूर सारी वेदना।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

चार परम दुर्लभ अंग (मूल गाथा- 1)

1 चार अंग दुर्लभ प्राणी को, मुक्ति के हित कहते,
मानवभव, सद्धर्म श्रवण और, धर्म में श्रद्धा रखते,
संयम में पुरुषार्थ जगाकर, जीवन सफल बना-लो।

मनुष्यत्वप्राप्ति की दुर्लभता (मूल गाथाएँ- 2 से 7)

2 जग में प्राणी कर्म कमाकर, विविध गति में जाता,
कभी असुर तो कभी नरक में, कभी देव गति पाता,
कभी क्षात्रकुल कभी अधम कुल, आवागमन मिटा-लो।

3 तृष्णावश निर्वेद न पाते, अशुभ कर्म कमाते,
नरकादिक दुर्गति में उनको, दुःख अनन्त रुलाते,
भाग्योदय से मिले मनुज गति, मानवता अपना-लो।

धर्म-श्रवण और उस पर श्रद्धा की दुर्लभता
(मूल गाथाएँ- 8 एवं 9)

4 नरतन पाकर भी दुर्लभ है, शास्त्र-ज्ञान को सुनना,
क्षमा-अहिंसा-तपोधर्म को, सुनकर स्वीकृत करना,
धर्म-श्रवण तो श्रद्धा दुर्लभ, श्रद्धा अडिग बना-लो।

संयम में पराक्रम की दुर्लभता (मूल गाथाएँ- 10 एवं 11)

5 मनुज जन्म और शास्त्र श्रवण, श्रद्धा भी यदि हो जाए,
दुर्लभतम है संयम साहस, वीर प्रभु फरमाए,
इन चारों से संवृत्त होकर, कर्म नष्ट कर डालो।

चतुरंग प्राप्ति से शुद्धि (मूल गाथाएँ- 12 एवं 13)

6 सरल हृदय की शुद्धि होती, धर्म वहीं टिक जाता,
घृत से सिंचित अग्नि सम वो, आत्मदीप्ति को पाता,
दूर करो सब कर्म के हेतु, उच्च गति को पा-लो।

परम्परागत फल (मूल गाथाएँ- 14 से 20)

7 शीलव्रतों का पालन करके, देवलोक में जाते,
दीर्घकाल सुख भोग वहाँ से, फिर मानव में आते,
पुण्य से पाते दस अंगों को, ऐसे कर्म कमा-लो।

8 क्षेत्र-भवन और दास-स्वर्ण ये, सुख साधन मिल जाते,
मित्र-ज्ञातिजन-उच्चगोत्र और, रोगरहित तन पाते,
महाप्राज्ञ-अभिजात-यशस्वी, निज सामर्थ्य जगा-लो।

9 धर्म आराधक होने से वे, निर्मल बोधि पाते,
विरतिरूप चारित्र पाल के, बाकी कर्म खपाते,
दुर्लभ चार अंग को पाकर, शाश्वत मुक्ति पा-लो।

सूक्तियाँ

1. **चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो।**
   माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमंमि य वीरियं।। -3/1
   इस संसार में जीवों को चार परम अंगों की प्राप्ति दुर्लभ है- 1. मनुष्यत्व, 2. सद्धर्म श्रवण, 3. श्रद्धा और 4. संयम में वीर्य (पराक्रम)।

2. **जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययंति मणुस्सयं।** -3/7
   क्रमशः आत्म-विशुद्धि को प्राप्त करते हुए जीव को मनुष्य भव की प्राप्ति होती है।

3. **सद्धा परमदुल्लहा।** -3/9
   श्रद्धा परम दुर्लभ है।

4. **सोही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।** -3/12
   जो सरल होता है उसे शुद्धि प्राप्त होती है और जो शुद्ध होता है उसमें धर्म ठहरता है।

चतुर्थ अध्ययन : असंस्कृत

अध्ययन-सार गीतिका

सांध नहीं सकता है कोई, जिन्दगी को जान-लो,
त्राण नहीं देता है कोई, तुम नींद से अब जाग-लो।
स्वछन्दता को छोड़ करके, विजय-पथ का हो वरण,
रत्नत्रयी-आराधना से, आत्म-रक्षक हो श्रमण।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

जीवन की असंस्कृतता (मूल गाथा- 1)

1 आयु क्षण-क्षण बीत रही है, सांध न सकता कोई,
मौत निकट जब आयेगी तो, बचा न सकता कोई,
किसकी शरण मिलेगी सोचो, प्रमत्त दशा को टाळौ।

प्रमत्तकृत पापकर्मों के परिणाम (मूल गाथाएँ 2 से 5)

2 पापकर्म से धन का संचय, कुटिल राह से करता,
परिजन में वह फँसा एक दिन, उसे छोड़ कर चलता,
पाप बांध कर नरक में जाता, दुःख से आज बचा-लो।

3 सेंध द्वार पर पकड़ा जाकर, चोर सजा है पाता,
ऐसे ही अपने कर्मों का, प्राणी फल है पाता,
कृत कर्मों का फल भोगे बिन, कैसे दुःख छुड़ा-लो?

4 पर के खातिर कर्म कमाता, उदयकाल जब आता,
कोई सहभागी नहीं बनता, जीव स्वयं फल पाता,
जो करता है वही भोगता, मन में इसे बसा-लो।

5 दीप बुझे तो मार्ग मिले नहीं, अन्ध गुफा में जैसे,
मोक्ष मार्ग भी मिल नहीं पाता, धन आसक्त को वैसे,
आखिर धन भी त्राण न देता, लोलुपता को टाळौ।

प्रतिक्षण अप्रमाद का उपदेश (मूल गाथाएँ 6 से 10)

6 सुप्तजनों में ज्ञानी साधक, रहे जागता हरदम,
निर्बल तन का नहीं भरोसा, काल बड़ा है निर्मम,
इसीलिए भारण्ड-पक्षी सम, जागरूक बन चालौ।

7 कदम-कदम दोषों से बचना, उनको बन्ध समझना,
गुणरत्नों की प्राप्ति तक ही, तन का पोषण करना,
गुण का हेतु नहीं लगे तन, संथारा अपना-लो।

8 सधा अश्व जो कवचयुक्त है, रण में विजयी होता,
संयम कवच धार के मुनि भी, मुक्त जगत् से होता,
स्वेच्छाचार त्याग के साधक, आज्ञा धर्म निभा-लो।

9 जागृत रहा नहीं जो पहले, फिर पीछे पछताता,
अन्त समय में ऐसा व्यक्ति, दुःख पीड़ा ही पाता,
जीवन का विश्वास नहीं है, कल की आश छुड़ा-लो।

10 सुलभ नहीं है अल्पकाल में, आत्मविवेकी बनना,
शीघ्र कामभोग को तज के, संयम पथ पर चलना,
समभावों से लोक समझ कर, सावधान बन चालौ।

कषायों से आत्म-रक्षण की प्रेरणा (मूल गाथाएँ- 11 से 13)

11 मोह-पाश को जय करने जो, संयम मार्ग विचरते,
विघ्न बहुत ही आते उनको, पीड़ित सारे करते,
मन से द्वेष करे ना उन पर, अविचल भाव जगा-लो।

12 काम-भोग अनुकूल विषय सब, आकर्षक हैं लगते,
विवेक मन्द हो जाता है यदि, राग-भाव जो रखते,
क्रोध मान और माया लोभ को, मन से दूर हटा-लो।

13 ''जीवन सांधा जा सकता है'', स्वेच्छाचारी कहते,
राग-द्वेष आधीन बने वे, निन्दा-विकथा करते,
आत्मगुणों के अर्जन के हित, उनसे दूरी बना-लो।

सूक्तियाँ

1. **असंखयं जीविय मा पमायए।** -4/1

   जीवन टूटने पर सांधा नहीं जा सकता, अतः प्रमाद मत करो

2. **वेराणुबद्धा नरयं उवेंति।** -4/2

   वैर की परम्परा को जो बांधे रखते हैं, वे नरक में जाते हैं।

3. **कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।** -4/3

   किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना मुक्ति नहीं मिलती।

4. **सक्कमुणा किच्चइ पावकारी।** -4/3

   पापात्मा अपने ही कर्मों से दुःख पाता है।

5. **कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, न बंधवा बंधवयं उवेंति।** -4/4

   कर्मफल भोगने के समय स्वजन सहभागी नहीं होते हैं।

6. **सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी, न वीससे पंडिए आसुपन्ने।** -4/6

   आशुप्रज्ञ पंडित-साधक मोहनिद्रा में सोये प्रमादी के बीच भी सब तरह से जागरूक रहे।

7. **छन्दं निरोहेण उवेइ मोक्खं।** -4/8

   स्वछन्दता का निरोध करने से मुक्ति मिलती है।

8. **कंखे गुणे जाव सरीरभेओ।** -4/13

   शरीर के छूटने तक अप्रमत्तभाव से सद्गुणों की आराधना करने की आकांक्षा रखें।

पंचम अध्ययन : अकाममरणीय

अध्ययन-सार गीतिका

अज्ञ-जन संत्रस्त होते, मृत्यु जब हो सामने,
लौट फिर-फिर मरण पाते, इस जगत को थामने।
आत्मज्ञानी को कभी भी, मरण से है भय नहीं,
भव-भ्रमण परिमित करे, संलेखना करके सही।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

द्विविध मरण का निरूपण (मूल गाथा- 1 एवं 2)

1 दुस्तर सागर तिरे अनेकों, बनकर केवलज्ञानी,
तीर्थंकर ने बोध दिया है, सुनलो उनकी बानी,
मरण अकाम-सकाम है दोउ, इनका ज्ञान बढ़ा-लो।

अकाम-मरण का स्वरूप (मूल गाथाएँ- 3 से 16)

2 अज्ञानी जन बाल-मरण से, बार-बार हैं मरते,
सकाम-मरण तो पंडित-ज्ञानी, एक बार ही करते,
काम-ग्रस्त के बाल-मरण का, अन्तर्ज्ञान करा-लो।

3 काम-भोगी कहता है मैंने, नहीं परलोक को देखा,
सुख तो है प्रत्यक्ष यहाँ पर, आगे शंका रेखा,
है या नहीं परलोक भी कोई, ऐसी सोच निकालो।

4 भोग परायण की जो होगी, मेरी भी गति होगी,
निर्लज्जता अपना कर ऐसी, दुःख पाता संभोगी,
त्रस-थावर की हिंसा करता, उसका संग छुड़ा-लो।

5 हिंसक-मृषावादी-मायावी, मद्य-मांस है खाता,
फिर भी श्रेय मानता इनको, नारी से बंध जाता,
कर्मदलों का संचय करता, दुष्चिंतन को टाळौ।

6 क्रूर-कर्म की गति जहाँ वो, नरक वेदना सुनता,
ग्लान बना परिताप करे फिर, सोच-सोच के डरता,
कृत-कर्मों से पछताता है, नरक-वास को टाळौ।

7 धुरी टूटे विषम मार्ग पर, गाड़ीवान पछताता,
सुपथ छोड़ कुपथ जो जाता, शोक बहुत है पाता,
एक दाँव में हारे बाजी, अकाम-मरण को टाळौ।

सकाम-मरण का स्वरूप (मूल गाथाएँ- 17 से 20)

8 मरण-सकाम का रूप समझलो, वीर प्रभु फरमाते,
इन्द्रियजेता-आत्मजयी और, पुण्यवान हैं पाते,
अनाकुल आघातरहित है, आतम भाव जगा-लो।

9 मिले नहीं यह मरण सभी को, भिक्षु या आगारी,
अविकल पालन करे नहीं जब, दोनों ही व्रतधारी,
दुर्लभ मरण-सकाम कहा है, इसका बोध करा-लो।

10 चारित्र रहित भिक्षु से होते, देशव्रती हैं बढ़कर,
उनसे बढ़कर सर्वव्रती हैं, श्रेष्ठ गुणों के सागर,
शुद्धाचारी साधुगण ही, संयम श्रेष्ठ कहा-लो।

सुव्रती श्रावक को देवलोक प्राप्ति

(मूल गाथाएँ- 21 से 24)

11 दुर्गति से दुःशील न बचते, कोई वेष भी धरले,
भिक्षाजीवी-जटा या चीवर, चाहे नग्न भी रहले,
सुव्रतधारी सद्गति पाते, निरतिचार व्रत पालौ।

12 गृहवासी श्रावक भी घर में, सामायिक चित्त धरता,
दोनों पक्ष में पौषध करता, व्रत में दृढ़ता रखता,
देह छोड़ सद्गति को पाता, संयम धर्म निभा-लो।

संवृत अनगार की मरणोत्तर गति (मूल गाथा- 25)

13 संवृत भिक्षु जो होते वे, उच्च गति ही जाते,
ऋद्धि वाले देव बने या, मुक्ति पद को पाते,
निरोध करो पाँचों आश्रव का, आवागमन मिटा-लो।

महर्द्धिक देवों का स्वरूप और स्थान

(मूल गाथाएँ 26 एवं 27)

14 देवलोक के उर्ध्वस्थान वे, उत्तरोत्तर हैं उत्तम,
जहाँ यशस्वी-दीर्घायु और, दीप्तिमान के संगम,
मन्द-मोह द्युतिमान देव हैं, सम्यग्दृष्टि कहा-लो।

देव आवासों में जाने के अधिकारी (मूल गाथा- 28)

15 ऐसे दिव्य देवलोक में ही, शान्त तपस्वी जाते,
भिक्षाजीवी, आगारी जो, पापों से हट जाते,
संयम तप का साधन लेकर, उच्च गति को पा-लो।

पंडित-मरण योग्य साधु की मृत्यु के समय मनःस्थिति (मूल गाथा- 29)

16 दांत संयमी पूज्यवरों की, सुनकर के शुभ शिक्षा,
त्रास न पाते बहुश्रुत मुनिवर, जब हो मरण परीक्षा,
मृत्यु बने महोत्सव अपना, ऐसा ज्ञान जगा-लो।

पंडित-मरण साधक का मृत्यु के समय कर्त्तव्य

(मूल गाथाएँ 30 से 32)

17 उभय मरण की करके तुलना, श्रेष्ठ मरण स्वीकारे,
दयाधर्म और क्षमा भाव से, आत्म प्रसन्नता धारे,
शांत-चित्त और निर्भय होकर, देह ममत्व को टाळौ।

18 मरण काल आने पर मुनिवर, अनशन व्रत अपनाए,
त्रिविध मरण-सकाम बताये, एक मरण को पाए,
संथारा-संलेखन व्रत से, कर्मक्षीण कर डालो।

सूक्तियाँ

1. **एवं धम्मं विउक्कम्म, अहम्मं पडिवज्जिया।**
   बाले मच्चुमुहं पत्ते, अक्खे भग्गे व सोयई।। -5/15
   धर्म का उल्लंघन करके जो अज्ञानी अधर्म को स्वीकार कर लेता है, वह मृत्यु के मुख में पड़ने पर उसी तरह शोक करता है जैसे विषम पथ पर धुरी टूटने पर गाड़ीवान करता है।

2. **एयाणि वि न तायंति, दुस्सीलं परियागयं।** -5/21
   ये सभी बाह्याचार दुर्गति से नहीं बचा सकते।

3. **न सन्तसन्ति मरणन्ते सीलवन्ता बहुस्सुया।** -5/29
   शीलवान और बहुश्रुत साधक मृत्युकाल में भी संत्रस्त नहीं होते।

षष्ठ अध्ययन : क्षुल्लक-निर्ग्रन्थीय

अध्ययन-सार गीतिका

बन्धनों की कर समीक्षा, स्वयं सत्पथ खोजना,
त्राण दे नहीं बन्धु-बांधव, कर्मफल को भोगना,
ग्रन्थियों से बच के साधु, मोह का छेदन करे,
विद्या-चरण से युक्त होकर, प्राण ना कोई हरे।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

अविद्या ही अनन्त संसार भ्रमणकारिणी (मूल गाथा-1)

1 विद्याहीन पुरुष ही जग में, अपना दुःख बढ़ाते,
इस अनन्त भव-सागर में वे, बहुरि पीड़ा पाते,
अज्ञान-अविद्या दुःख का कारण, इनको आज मिटा-लो।

सत्य-दृष्टि से अविद्या का त्याग (मूल गाथाएँ- 2 से 6)

2 जन्म-मरण और बन्धन की, करके स्वयं समीक्षा,
स्वयं सत्य की खोज करे रख, मैत्री की आकांक्षा,
जो जीवों का हो हितकारी, ऐसा सत्य जगा-लो।

3 मात-पिता और भाई-बन्धु, दुनिया के जो नाते,
कर्मोंदय में कोई न रक्षक, खुद ही दुख हैं पाते,
सम्यग्दृष्टि प्रेक्षा करके, राग-भाव को टाळौ।

4 गाय-बैल और सेवक आदि, स्वेच्छा से जो तजता,
देवगति में जाकर पाता, इष्ट रूप की क्षमता,
त्राण नहीं देते धन-दौलत, इनका त्याग करा-लो।

हिंसादि आभ्यन्तर ग्रन्थों का त्याग

(मूल गाथाएँ 7 एवं 8)

5 अपने सम सब जग को देखे, सबको जीवन प्यारा,
वैर भाव से उपरत होकर, बने नहीं हत्यारा,
बिना दिये तृण भी ना लेवे, परिग्रह सारे टाळौ।

अविद्याजनित भ्रान्त मान्यताएँ (मूल गाथाएँ- 9 से 12)

6 कतिपय वादी कहते हैं यों, त्याग बिना भी मुक्ति,
बन्ध-मोक्ष की चर्चा केवल, मुक्ति की है युक्ति,
करे नहीं वे मोक्ष साधना, भ्रान्त धारणा टाळौ।

7 त्राण नहीं देती भाषाएँ, और विद्या का शिक्षण,
मान रहे जो इनको त्राता, कैसे उनका रक्षण,
विषयों में आसक्ति दुःख है, इसका ज्ञान करा-लो।

साधक को अप्रमत्त और विरक्ति का उपदेश

(मूल गाथाएँ- 13 से 17)

8 चार गति की खुली दिशाएँ, सोच-समझ पग धरना,
पथ है लम्बा मोक्ष लक्ष्य रख, नहीं प्रमाद में रहना,
कर्म-निर्जरा हित तन पोषे, विषय-विकार मिटा-लो।

9 अवसर का ज्ञाता साधु ही, कर्म-बन्ध से बचता,
दोषहीन आहार ग्रहण कर, संग नहीं कुछ रखता,
पक्षीवत् निःस्पृह हो विचरे, चिन्ता मुक्त करा-लो।

10 रखे लज्जा सदा एषणा, एक जगह नहीं रहना,
अर्हत्-ज्ञातपुत्र यों कहते, कभी प्रमाद न करना,
श्रेष्ठ ज्ञान दर्शनधारी की, आज्ञा को प्रतिपालौ।

सूक्तियाँ

1. **अप्पणा सच्चमेसेज्जा।** -6/2

   अपनी आत्मा के द्वारा, स्वयं की प्रज्ञा से सत्य का अनुसंधान करें।

2. **मेत्तिं भूएसु कप्पए।** -6/2

   समस्त प्राणियों पर मित्रता का भाव रखना चाहिए।

3. **न हणे पाणिणो पाणे, भयवेराओ उवरए।** -6/7

   जो भय और वैर से उपरत हैं- मुक्त हैं, वे किसी प्राणी की हिंसा नहीं करते।

4. **अज्झत्थं सव्वओ सव्वं।** -6/7

   सबको सुख प्रिय है।

5. **भणन्ता अकरेन्ता य बन्ध-मोक्खपइण्णिणो।**
   वाया-विरियमेत्तेण समासासेन्ति अप्पयं।। -6/10

   जो ''ज्ञान ही मोक्ष का कारण है'', यों कहते हैं किन्तु मोक्ष के लिए कोई क्रिया नहीं करते, वे बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्तों की स्थापना ही करने वाले हैं, वे ज्ञानवादी केवल वाणी की वीरता से अपने आपको झूठा आश्वासन देते रहते हैं।

6. **पुव्वकम्मखयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे।** -6/14

   पूर्वकृत कर्मों को नष्ट करने के लिए इस देह की सार सम्भाल रखनी चाहिए।

7. **पक्खी पत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए।** -6/16

   मुनि पक्षी की भांति कल की अपेक्षा न रखता हुआ संयम-मार्ग में विचरण करे।

सप्तम अध्ययन : उरभ्रीय

अध्ययन-सार गीतिका

अल्प सुख की प्राप्ति हेतु, विषय-सुख को भोगना,
मानो मनुज के मूल को ही, नष्ट करके छोड़ना।
प्राप्त होती त्याग से ही, उच्च गति की योग्यता,
सप्त-अध्ययन से वरण हो, श्रेय-पथ की दिव्यता।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

उरभ्र दृष्टान्त से विषयभोगों का कटु परिणाम

(मूल गाथाएँ- 1 से 7)

1 रस का लोभी बनके मेमना, खुश होकर के खाता,
जीमन जब अभ्यागत आते, देख-देख तड़फाता,
भोजन के हित काटा जाता, रस आसक्ति छुड़ा-लो।

2 ऐसे ही पापी-अज्ञानी, झूठे-चोर-लुटेरे,
महापरिग्रही-महारंभी वे, विषय गृद्धि से घेरे,
मानो वे मेहमान नरक के, ऐसे पाप न पालौ।

महापापी को अन्तिम समय शोक (मूल गाथाएँ- 8 से 10)

3 आखिर एक दिन छोड़ के सारे, परभव को जब जाता,
कर्मों से भारी होकर के, मरण-काल पछताता,
अवश बना वो नरक में जाता, अधोगति को टाळौ।

अल्पकालीन सुख हेतु दीर्घकालीन सुखों को खोना
(मूल गाथाएँ- 11 से 13)

4 एक टके के लोभ के खातिर, मूल हजार भी खोया,
आम्र-स्वाद के वश हो राजा, जीवन राज्य डुबोया,
अल्प-सुखों के खातिर आगे, दिव्य-भोग क्यों टाळौ?

तीन वणिकों के दृष्टान्त से प्रतिबोध
(मूल गाथाएँ- 14 से 16)

5 तीन वणिक धन लेकर जाते, एक मूल ले आता,
दूजा लाभ कमाकर लाता, तीजा मूल गँवाता,
मूल मनुज-गति, देव लाभ है, तीजी दुर्गति टाळौ।

कुगति से सुगति में आना दुर्लभ (मूल गाथाएँ- 17 से 19)

6 हार के वो सुगति अज्ञानी, आखिर दुर्गति पाते,
दुर्लभ दुर्गति से छुटकारा, ज्ञानीजन चेताते,
मूल सम्पदा मनुज गति है, इसको सफल बना-लो।

मनुजत्व एवं देवत्व को प्राप्त करने की योग्यता
(मूल गाथाएँ- 20 से 22)

7 सुव्रती बन जो घर में रहते, वे नरभव हैं पाते,
विपुल शीलवान जो होते, वे देवों में जाते,
''कर्म-सत्य होते हैं प्राणी'', सूक्ति मन में बसा-लो।

8 देख पराक्रम के फल को, साधक का हो चिंतन,
क्यों खोऊँ में उक्त लाभ को, क्यों पाऊँ अनुशोचन ?
विषय-भोग से हार न मानें, वो पुरुषार्थ जगा-लो।

दिव्य और मानुषी काम-भोगों की तुलना
(मूल गाथाएँ- 23 एवं 24)

9 देवों के आगे मानव सुख, ज्यों सागर में बिन्दु,
अल्पायु पाकर के मानव, भूल रहा सुख-सिन्धु,
अल्प-सुखों में योगक्षेम को, मन से नहीं निकालो।

काम-भोगों से अनिवृत्ति एवं निवृत्ति का परिणाम
(मूल गाथाएँ- 25 से 27)

10 काम-भोग को जो नहीं छोड़े, उसका हित ना सधता,
न्याय मार्ग को सुनकर भी वो, सत्पथ को है तजता,
काम-भोग से निवृत्त होकर, देव गति को पा-लो।

11 देवलोक से च्यवकर फिर वो, मानव-भव में आता,
ऋद्धि-कान्ति-उच्चवर्ण-यश, दीर्घायु को पाता,
श्रेष्ठ सुखों को पाकर के भी, विषयासक्ति हटा-लो।

बाल और धीर पुरुष की गति (मूल गाथाएँ- 28 से 30)

12 अज्ञानी की मूढमति जो, धर्म-मार्ग को तजता,
अधर्म-निष्ठ होकर नरकों में, उत्पन्न होता रहता,
धीर धर्म को धारण करके, देव गति को पा-लो।

13 ज्ञान-भाव, अज्ञान-भाव की, करके सम्यक् तुलना,
बाल-भाव को तजकर साधक, श्रेष्ठ ज्ञान में रमना,
गुण-दोषों की करे समीक्षा, धीर भाव अपना-लो।

सूक्तियाँ

1. **आसुरियं दिसं बाला, गच्छंति अवसा तमं।** -7/10

   अज्ञानी जीव विवश हुए अन्धकाराच्छन्न आसुरी गति को प्राप्त करते हैं।

2. **माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे।**
   मूलच्छेएण जीवाणं, नरग-तिरिक्खत्तणं धुवं।। -7/16

   मनुष्यत्व मूल धन है, देवगति लाभ रूप है, मूल के नाश हो जाने से नरक और तिर्यंच गति निश्चित है।

3. **कम्मसच्चा हु पाणिणो।** -7/20

   प्राणी कर्म सत्य होते हैं अर्थात् स्वकृत कर्मों का फल अवश्य पाते हैं।

4. **कुसग्गमेत्ता इमे कामा, सन्निरुद्धंमि आउए।**
   कस्स हेउं पुराकाउं, जोगक्खेमं न संविदे ? -7/24

   मनुष्यभव की इस अति संक्षिप्त आयु में ये कामभोग कुश के अग्रभाग पर स्थित जल बिन्दु जितने हैं, फिर भी अज्ञानी किस कारण से अपने लिए लाभप्रद योगक्षेम को नहीं समझता ?

अष्टम अध्ययन : कापिलीय

अध्ययन-सार गीतिका

दुर्गति के हेतु दो हैं, उनसे बच करके रहे,
लोभ पहला, काम दूजा, भिक्षु इनमें ना बहे।
जैसे-जैसे लाभ बढ़ता, लोभ भी बढ़ता वहाँ,
कपिल मुनिवर ने उसे ही, दूर करने को कहा।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

दुर्गति निवारणोपाय की जिज्ञासा (मूल गाथा- 1)

1 दुःख से पूर्ण जगत यह नश्वर, दुर्गति कैसे टालूँ,
कैसे कर्म करूँ बतलाओ, किरपा करो दयालु,
केवलज्ञानी मुनिवर बोले, जग से राग हटा-लो।

दुर्गति निवारण के उपाय (मूल गाथाएँ- 2 से 6)

2 पूर्व सभी संयोग तजो और, बन्धन सारे तोड़ो,
रागी पर ना राग करो और, पर आसक्ति छोड़ो,
सब जीवों के हित में बोले, सुनकर दुःख मिटा-लो।

3 सर्व परिग्रह और कलह को, भिक्षु मन से छोड़े,
काम-भोग के कटु फल को लख, राग-भाव को तोड़े,
कर्म-बन्ध का कारण लिप्सा, मन से उसे हटा-लो।

4 काम-भोग जो तज नहीं सकते, वे कायर कहलाते,
अंतिम दम तक वीर पुरुष ही, व्रत को सदा निभाते,
जैसे वणिक् सिन्धु तिर जाते, वैसे व्रत अपना-लो।

पापदृष्टि की दुर्गति (मूल गाथाएँ- 7 एवं 8)

5 ''हम हैं साधु'' ऐसा कहकर, फिर भी हिंसा करते,
प्राणिवध से पापमति वे, अंत नरक में गिरते,
''हिंसक की नहीं होती मुक्ति'', मन में सूत्र बसा-लो।

हिंसादि से दूर रहने की प्रेरणा (मूल गाथाएँ- 9 से 12)

6 छः काया का रक्षक मुनिवर, कभी न हिंसा करता,
ऊपर से जल जैसे बहता, मुनि के पाप न टिकता,
तीन योग से त्रस-थावर की, कभी न हिंसा पालौ।

7 संयम-यात्रा के हित भिक्षु, शुद्ध एषणा जाने,
रूखा-सूखा मिलता जो भी, उसमें तुष्टि माने,
धर्म-साधना के हित तन को, भिक्षु उसे सम्भालो।

स्वप्नादि विद्याओं के प्रयोग का निषेध (मूल गाथा- 13)

8 स्वप्न शास्त्र और लक्षण ज्ञाता, अंगविद्या का धारी,
इनका सेवन जो भी करता, नहीं होता अणगारी,
आत्मार्थी मुनि मंत्र-तंत्र के, सब प्रपंच छुड़ा-लो।

समाधियोग से भ्रष्ट साधकों की गति

(मूल गाथाएँ- 14 एवं 15)

9 समाधि योग से भ्रष्ट हुए, काम-भोग रस लेते,
ऐसे साधक मरकर आगे, असुरकाय में जाते,
बोधि मिलना दुर्लभ उनको, इसका ध्यान करा-लो।

लोभात्मा को संतोष नहीं (मूल गाथाएँ- 16 एवं 17)

10 दो माशा सोने की इच्छा, पहुँच गई क्रोड़ों पर,
मिल जाए धरती-धन सारा, वह भी लगता कमतर,
लाभ से लोभ सदा बढ़ता है, लोभ-लालसा टाळौ।

वासनाप्रिय नारी से सावधानी (मूल गाथाएँ- 18 एवं 19)

11 राक्षसीरूपा चंचल चित्त की, नारी में ना फँसना,
दास पुरुष सम नाच नचाती, उससे दूर ही रहना,
त्यागी साधु आतमहित में, नारी संग छुड़ा-लो।

उपसंहार (मूल गाथा- 20)

12 प्रज्ञावंत श्री कपिल मुनि ने, साधु धर्म बताया,
इस-भव पर-भव हितकर होगा, जिसने इसे निभाया,
सम्यक् इसका आराधन कर, भव का भ्रमण मिटा-लो।

सूक्तियाँ

1. **न हु पाणवहं अणुजाणे, मुच्चेज्ज कयाइ सव्वदुक्खाणं।** -8/8

   जो प्राणिवध का अनुमोदन करता है, वह कदापि समस्त दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता।

2. **जायाए घासमेसेज्जा, रसगिद्धे न सिया भिक्खाए।** -8/11

   भिक्षाजीवी साधु संयम-यात्रा के लिए आहार की एषणा करे, किन्तु वह रसों में आसक्त न हो।

3. **कसिणं पि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स।**
   तेणावि से न संतुस्से, इह दुप्पूरए इमे आया।। -8/16

   यदि धन-धान्य से पूर्ण यह समग्र लोक भी किसी एक को दे दिया जाए, तो भी वह उससे सन्तुष्ट नहीं होगा। इतनी दुष्पूर है यह लोभाभिभूत आत्मा।

4. **जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई।** -8/17

   ज्यों-ज्यों लाभ बढ़ता है, त्यों-त्यों लोभ भी बढ़ता है अर्थात् लाभ से लोभ बढ़ता जाता है।

नवम अध्ययन : नमिप्रव्रज्या

अध्ययन-सार गीतिका

है अनेकों जिस जगह पर, दुःख और संघर्ष हैं,
एक-एकाकी जहाँ पर, आत्म का उत्कर्ष है।
जीतना अन्तर-रिपु को, श्रेयकर है सर्वदा,
इच्छारहित नमिराज की, वैराग्य सच्ची संपदा।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

नमिराज : जन्म से अभिनिष्क्रमण तक

(निर्युक्तिकार के अनुसार एवं मूल गाथाएँ- 1 से 5)

1 अमरलोक से च्युत हो नमिवर, नरभव में हैं आते,
उपशान्त मोह के हो जाने से, याद पूर्व की पाते,
मिथिला के वे राजा बनते, उनकी कथा सुना-लो।

2 दारुण ज्वर से ग्रसित हुए नमि, घोर वेदना पाते,
हुए सभी उपचार राज्य में, लाभ नहीं पर पाते,
आखिर राय मिली राजा को, चन्दन लेप लगा-लो।

3 चन्दन घिसने लगी रानियाँ, नमि का दाह मिटाने,
कंकण उनके बजे जोर से, नमि को लगे सताने,
नमि राजा आहत हो बोले, कंकण सभी निकालो।

4 इक-इक छोड़ सभी ने अपने, कंकण तभी उतारे,
बन्द हुई आवाजें सारी, नमि ने भाव सँवारे,
जहाँ भीड़ है, द्वन्द्व वहाँ है, एकत्व भाव जगा-लो।

5 एक अकेले आत्मभाव में, नीरवता है बसती,
पर-भावों की भीड़ जहाँ है, दुःख की सरिता बहती,
भावित हो एकत्व भाव से, द्वन्द्व की पीड़ मिटा-लो।

6 वैराग्य-भाव जगे राजन् के, सर्व संग को छोड़ा,
सुत को राज्य सौंप नमि ने, मिथिला से मुख मोड़ा,
दीक्षा हेतु निकल पड़े वे, वीतराग पथ चालौ।

7 देवों सम ऐश्वर्य भोग कर, बुद्ध हुए नमिराजा,
छोड़े सारे परिजन को और, सेना गाजा-बाजा,
मिथिला में कोलाहल फैला, बोले प्रजा रुका-लो।

8 ज्ञान-गुणों की उच्च भूमि में, उद्यत थे राजर्षि,
विप्ररूपधर देवराज तब, आये बन प्रियभाषी,
आया समय परीक्षा का अब, प्रण की परख करा-लो।

विप्र वेष में देवेन्द्र के नमिराजा से प्रश्न (मूल गाथा- 6)

9 इन्द्र ने पूछे प्रश्न नमि से, विप्र वेष में आकर,
प्रेरक उत्तर दिये ऋषि ने, करके सत्य उजागर,
उनके समाधान को सुनलो, सुनकर भरम मिटा-लो।

प्रथम प्रश्न का उत्तर- मिथिला में कोलाहल

(मूल गाथाएँ- 7 से 10)

10 कोलाहल का मैं नहीं कारण, सब स्वारथ को रोते,
क्रन्दन करते पक्षीगण भी, जब-जब वृक्ष को खोते,
सीमितजनों का मोह छोड़कर, जग मैत्री अपना-लो।

द्वितीय प्रश्न का उत्तर- मिथिला का जलना

(मूल गाथाएँ- 11 से 16)

11 मिथिला के जलने से यहाँ पर, मेरा कुछ नहीं जलता,
संयोगों से मुक्त भिक्षु का, धर्म एक ही समता,
एक-अकेला आतम अपना, निज-गुण को सरसा-लो।

तृतीय प्रश्न का उत्तर- नगर की सुरक्षा

(मूल गाथाएँ- 17 से 22)

12 नश्वर नगरी छोड़ चले हम, कर्म युद्ध जीतेंगे,
आत्म-नगर की रक्षा के हित, पल-पल सजग रहेंगे,
तप-संयम आदि सद्गुण से, भव-भव भ्रमण मिटा-लो।

चतुर्थ प्रश्न का उत्तर- गृह-प्रासादि का निर्माण

(मूल गाथाएँ- 23 से 26)

13 संशय में ही जीने वाला, जग में घर बनवाता,
दृढ़ विश्वासी आत्मगुणों का, शाश्वत घर को पाता,
नश्वर घर का मोह छोड़कर, आवागमन मिटा-लो।

पंचम प्रश्न का उत्तर- चोर डाकुओं से नगर रक्षा

(मूल गाथाएँ- 27 से 30)

14 राजनीति में राग-द्वेष से, कर्म-बन्ध बढ़ जाते,
निरपराधी दंडित होते, अपराधी बच जाते,
पाप-कर्म से जुड़ी आतमा, खुद पर न्याय जगा-लो।

षष्ठ प्रश्न का उत्तर- उद्दण्ड राजाओं को जीतना

(मूल गाथाएँ- 31 से 36)

15 रण में जीते लाख सुभट, पर वो नहीं जयी कहाता,
आत्म-शत्रुओं को जो जीते, परम विजय को पाता,
इन्द्रिय मन और चार कषाय को, जीत के आनन्द पा-लो।

सप्तम प्रश्न का उत्तर- दान-पुण्य

(मूल गाथाएँ 37 से 40)

16 मास-मास दस लाख गाय का, दान-पुण्य जो करता,
संयम ग्रहण श्रेय है उसको, भले दान नहीं करता,
षट्काया प्रतिपालक मुनि को, अपना शीश नमा-लो।

अष्टम प्रश्न का उत्तर- गृहस्थाश्रम में धर्म साधना

(मूल गाथाएँ- 41 से 44)

17 बाल तपस्वी का तप भी, भले घोर हो कितना,
मुनिधर्म के आगे नहीं वह, कला सोलहवीं जितना,
संयम मे ही जीना-मरना, संयम भाव जगा-लो।

नवम प्रश्न का उत्तर- हिरण्य स्वर्ण से भंडार भरना

(मूल गाथाएँ- 45 से 49)

18 धन के भी पर्वत मिल जाए, लोभी तृप्त न होता,
इच्छाओं का अन्त नहीं है, उनमें फँसकर रोता,
यदि चाहो शान्ति की इच्छा, इच्छा शान्त करा-लो।

दशम प्रश्न का उत्तर- प्राप्त को छोड़ अप्राप्त को पाना

(मूल गाथाएँ- 50 से 54)

19 काम-भोग को विष सम जानो, दुर्गति में ले जाते,
प्राप्य-अप्राप्य की छोड़ो आशा, राजर्षि चेताते,
चार कषायों को तज करके, अधम गति को टाळौ।

देवेन्द्र द्वारा असली रूप में आना (मूल गाथाएँ- 55 से 58)

20 विप्र रूप को छोड़ इन्द्र ने, नमन किया मुनिवर को,
विस्मित हूँ तुमने जीता है, क्रोध-मान दुष्कर को,
छोड़ा लोभ मुनि ने जैसे, मन से लोभ निकालो।

21 उत्तम तेरा मार्दव मुनिवर! उत्तम तेरी मृदुता!
क्षमा अलोभ उत्तम है तेरा! उत्तम तेरी सरलता!
कर्मों की रज धुल जायेगी, निश्चल धर्म निभा-लो।

देवेन्द्र का प्रस्थान (मूल गाथाएँ- 59 से 62)

22 नमन किया पुनि-पुनि मुनिवर को, गाकर उनकी महिमा,
निश्चल आत्मभाव में मुनिवर, क्या थी उनकी गरिमा,
संबुद्ध भोगों से निवृत्त हो, नमि-से भाव जगा-लो।

सूक्तियाँ

1. **सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो नत्थि किंचण।** -9/14
जिनके पास अपना कुछ भी नहीं हैं, वे सुख से रहते हैं और जीते हैं।

2. **पियं न विज्जई किंचि, अप्पियं पि न विज्जए।** -9/15
भिक्षु के लिए न कोई वस्तु प्रिय होती है और न ही कोई वस्तु अप्रिय होती है।

3. **सद्धं नगरं किच्चा, तव-संवरमग्गलं।**
खंति निउणपागारं, तिगुत्तं दुप्पधंसयं।।
धणुं परक्कमं किच्चा, जीवं च ईरियं सया।
धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेण पलिमन्थए।।
तवनारायजुत्तेण, भेत्तूणं कम्मकंचुयं।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चए।। -9/20, 21, 22
श्रद्धा को नगर, तप और संवर को अर्गला, क्षमा को सुदृढ़ प्राकार बना कर, दुर्ग को त्रिगुप्ति से सुरक्षित एवं अपराजेय बनाकर, पराक्रम को धनुष, ईर्यासमिति को धनुष की प्रत्यंचा तथा धृति को उसकी मूठ बनाकर, सत्य से उसे बांधकर, तपरूपी बाणों से कर्मरूपी कवच को भेदने वाला अंतरंग संग्राम का विजेता मुनि संसार से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

4. **जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे।**
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ।। -9/34
जो दुर्जय संग्राम में दस लाख सुभटों को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो एक मात्र अपने को जीत लेता है, यही उसकी परम विजय है।

5. **इच्छा हु आगाससमा अणंतिया।** -9/48
इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त होती हैं।

6. **अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई।**
माया गईपडिग्घाओ, लोभाओ दुहओ भयं।। -9/54
क्रोध से जीव नरक गति में जाता है, मान से अधमगति मिलती है, माया से सुगति में बाधाएँ आती हैं और लोभ से इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार का भय होता है।

दशम अध्ययन : द्रुमपत्रक

अध्ययन-सार गीतिका

प्रमाद ना हो पल का गौतम! आयु नियत है नहीं,
द्रुमपत्रक-सा है जीवन, बात प्रभु ने है कही।
विषम-पथ को छोड़ पंथी, राज-पथ को थाम-ले,
रुक न जाना तट पे आकर, पार पाना धार-ले।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

जीवन की क्षणभंगुरता (मूल गाथाएँ- 1 से 3)

1 वृक्ष-पत्र सम जीवन नश्वर, ओस-बिन्दु सी आयु,
ऐसी ही गति मानव की है, कोई नहीं चिरायु,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

2 अल्पकाल की इस आयु में, विघ्न बहुत ही आते,
दूर करो संचित कर्मों को, ज्ञानीजन चेताते,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

मनुष्य जन्म प्राप्ति की दुर्लभता (मूल गाथाएँ- 4 से 15)

3 पुण्यहीन चिरकाल यहाँ पर, जन्म नहीं हैं पाते,
कर्म-बन्ध अति गाढ़े होते, गति-गति तड़फाते,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

4 पृथ्वी, अप, तेउ, वायु में, असंख्या काल बिताया,
वनस्पति में आकर प्राणी, अनन्त काल रह पाया,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

5 एकेन्द्रिय से निकले प्राणी, बे-इन्द्रिय में आये,
त्रि-इन्द्रिय चतुरिन्द्रिय में फिर, संख्या काल बिताये,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञाना जगा-लो।

6 प्रबल पुण्य से आते हैं, पंचेन्द्रिय में प्राणी,
सात-आठ भव रहे यहाँ पर, ये आगम की वाणी,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

7 देव-नरक में जाने वाले, इक-इक भव ही रहते,
सुख-दुःख पाते उन गतियों में, मानव को है तरसते,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

8 प्रमाद-बहुल प्राणी ने देखो, गति-गति में जाकर,
शुभ-अशुभ कर्मों के कारण, पाये दुःख निरन्तर,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

मनुष्य जन्म प्राप्ति के बाद धर्माचरण की दुर्लभता
(मूल गाथाएँ- 16 से 20)

9 दुर्लभ नरतन, आर्य क्षेत्र है, पूर्ण इन्द्रियाँ भी पाना,
धर्म श्रवण संग दुर्लभ श्रद्धा, दुर्लभ संयम निभाना,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

इन्द्रिय बल की उत्तरोत्तर क्षीणता के कारण अप्रमाद की प्रेरणा (मूल गाथाएँ- 21 से 27)

10 पाँच इन्द्रियाँ, श्वेत केश और, जर्जर होता तन-मन,
जब तक स्वस्थ तभी तक होता, रत्नत्रयी आराधन,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

अप्रमाद में बाधक तत्त्वों से दूर रहना
(मूल गाथाएँ- 28 से 30)

11 कमल लिप्त ना होता जल से, वैसे ही तुम बनना,
स्नेह छोड़ निर्लिप्त बनो अब, बन्धन सारे तजना,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

12 अनगार वृत्ति से निकला है फिर, वमन किया ना खाना,
बन्धु-बान्धव धन-दौलत की, आशा सभी बुझाना,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

प्राप्त नैयायिक पथ पर चलना (मूल गाथाएँ- 31 एवं 32)

13 विषम मार्ग को छोड़ा तुमने, राजमार्ग पर आये,
दृढ़ निश्चय से चले-चलो अब, छोड़ो सभी पराये,
मोक्ष-मार्ग अब प्राप्त तुम्हें है, गौतम इसे सम्भालो।

विषम पथ पर न चलने का निर्देश (मूल गाथा- 33)

14 भार को लेकर चला जो उत्पथ, बीच मार्ग पछताता,
जिन-पथ तज कर मिथ्यामत से, कभी न रखना नाता,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

संसार सागर पार करने का निर्देश (मूल गाथाएँ- 34 एवं 35)

15 पार किया है महासागर तो, ठहर गये क्यों तट पर,
पाओगे एक दिन सिद्धि पद, क्षपक श्रेणी को चढ़कर,
गौतम छोड़ प्रमाद को अब तो, आतम ज्ञान जगा-लो।

अन्तिम उपदेश और सिद्धगति पाना
(मूल गाथाएँ- 36 एवं 37)

16 द्रव्य-भाव से विचरण करना, शांत संयमी बनकर,
गौतम ने सिद्धि पद पाया, प्रभु वचनों को सुनकर,
प्रमाद सभी तज करके साधक, शाश्वत सुख को पा-लो।

सूक्तियाँ

1. **दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।**
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए।। -10/1
जैसे रात्रि-समूह के बीत जाने पर वृक्ष का पका हुआ पत्ता गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्यों (प्राणियों) का जीवन भी एक दिन समाप्त हो जाता है, अतः हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

2. **कुसग्गे जह ओसबिन्दुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।**
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए।। -10/2
जैसे कुश के अग्र भाग पर लटकता हुआ ओस का बिन्दु थोड़े समय तक ठहरता है, इसी प्रकार मनुष्यों का जीवन भी क्षण भंगुर है, अतः हे गौतम्! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

3. **इह इत्तरियम्मि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए।** -10/3
अल्पकालीन आयुष्य में जीवन बहुत से विघ्नों से परिपूर्ण है।

4. **दुल्लहे खल माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।** -10/4
विश्व के समस्त प्राणियों को चिरकाल में भी मनुष्य भव दुर्लभ है।

5. **लद्धूण वि माणुसत्तणं, आरिअत्तं पुणरावि दुल्लहं।**
लद्धूण वि आरियत्तणं, अहीणपंचिंदियया हु दुल्लहा।
अहीण पंचिन्दियत्तं पि से लहे, उत्तम धम्मसुई हु दुल्लहा।
लद्धूण वि उत्तमं सुइं, सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा।
धम्मं पि हु सद्दहन्तया, दुल्लहया काएण फासया। -10/16से 10/20
दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर भी आर्यत्व पाना और भी दुर्लभ है।
आर्यत्व पाकर भी पंचेन्द्रिय की परिपूर्णता पाना निश्चय ही दुर्लभ है।
अविकल पंचेन्द्रियों के प्राप्त होने पर भी उत्तम धर्म का श्रवण और भी दुर्लभ है।
उत्तम धर्म विषयक श्रुति प्राप्त हो जाने पर उस पर श्रद्धा होना और भी दुर्लभ है।
उत्तम धर्म पर श्रद्धा होने पर भी तद्नुरूप आचरण अति दुर्लभ है।

6. **परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते।**
से सव्वबले य हायई, समयं गोयम! मा पमायए।। -10/26
तुम्हारा यह तन जीर्ण-शीर्ण हो रहा है। तुम्हारे ये केश अब सफेद हो रहे हैं और क्रमशः शरीर के समस्त अवयवों का बल क्षीण हो रहा है, ऐसी स्थिति में हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

7. **वोच्छिन्द सिणेहमप्पणो, कुमुयं सारइयं व पाणियं।** -10/28
जिस प्रकार शरतकालीन कुमुद जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तू भी अपने स्नेह को दूर कर।

8. **मा वन्तं पुणो वि आइए।** -10/29
एक बार वमन किये काम भोगों को पुनः मत पीना।

9. **तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।** -10/34
तू महासागर को तो पार कर गया है अब तीर के पास पहुँच कर क्यों खड़ा है ?

ग्यारहवाँ अध्ययन : बहुश्रुत-पूजा

अध्ययन-सार गीतिका

गुरुवर की आज्ञा में रहे और, हो विनय की पालना,
पूज्य बुश्रुतता है होती, चरण-श्रुत की साधना,
अज्ञान का तम नष्ट करके, तप से उनका शोभना,
मुक्ति साधन जो कहा है, श्रुत की करलो अर्चना।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

आचार कथन प्रतिज्ञा (मूल गाथा- 1)

1 संयोगों से मुक्त हुआ जो, बनता है अनगारी,
बहुश्रुत का आचार कहूँ जो, होता है हितकारी,
उनका रूप समझ करके अब, उनको शीश झुका-लो।

अबहुश्रुत के लक्षण (मूल गाथा- 2)

2 विनय-धर्म को नहीं पालता, विद्याहीन आहारी,
वश में नहीं इन्द्रियाँ जिसके, दंभ भरा है भारी,
अर्थहीन जो बातें करता, अबहुश्रुत कहा-लो।

अबहुश्रुतता के कारण (मूल गाथा- 3)

3 नहीं अधिकारी वो शिक्षा का, जो क्रोधी, अभिमानी,
आलस, रोग, प्रमाद के रहते, नहीं बन सकता ज्ञानी,
बाधक कारण पाँच को टाळौ, फिर तुम ज्ञान बढ़ा-लो।

बहुश्रुतता के साधक कारण (मूल गाथाएँ- 4 एवं 5)

4 शान्त-दान्त हो, हास्य करे ना, सत्य में हो अनुरक्ति,
प्रकट करे नहीं मर्म किसी का, रस में नहीं आसक्ति,
दूषण रहित चरित पालन कर, बहुश्रुतता प्रकटा-लो।

अविनीत के लक्षण (मूल गाथाएँ 6 से 9)

5 बार-बार जो क्रोध हैं करते, मैत्री को ठुकराते,
गुरुजन की जो निन्दा करते, श्रुत-दंभी बन जाते,
असंविभागी, अप्रीतिकर, अविनीत कहा-लो।

सुविनीत के लक्षण (मूल गाथाएँ- 10 से 13)

6 पन्द्रह कारण से साधकजन, सुविनीत कहलाते,
नम्र करे व्यवहार सभी से, चंचलता नहीं लाते,
निश्छल हो मन करे न कौतुक, तिरस्कार को टाळौ।

7 क्रोध न रखे, रहे आभारी, उन्मत्त न हो श्रुत से,
करे नहीं दोषी की निन्दा, कुपित नहीं साथी से,
उपकारी अप्रिय मित्र के, गुण सारे अपना-लो।

8 दूर कलह से रहे सदा ही, लज्जावान कुलीन हो,
इन्द्रिय मन का करे वो गोपन, भिक्षु इनमें प्रवीण हो,
अपना करके इन लक्षण को, सच्चे विनयी कहा-लो।

शिक्षा पाने योग्य के लक्षण (मूल गाथा- 14)

9 तपोनिष्ठ बन गुरु चरणों में, संयम योग जगाएँ,
प्रियकारी और प्रियभाषी बन, शास्त्रज्ञान को पाएँ,
प्रकटाकर इन गुण से खुद को, शिक्षा पात्र बना-लो।

बहुश्रुत की विशेषताएँ (मूल गाथाएँ- 15 से 32)

10 जिनशासन में चन्द्र-सूर्य सम, बहुश्रुत शोभा पाते,
सत्रह उपमा देकर आगम, उनकी महिमा गाते,
सत्यमार्ग का पोषक श्रुत है, पढ़-लो और पढ़ा-लो।

सूक्तियाँ

1. **अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई।**
   थम्भा कोहा पमाएणं, रोगेणालस्सएण य।। -11/3
   पाँच कारणों से शिक्षा की प्राप्ति नहीं होती है, वे कारण हैं- अभिभान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य।

2. **वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं।**
   पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहई।। -11/14
   जो सदैव गुरु की आज्ञा में चलता है, जो धर्मप्रवृत्तिमान् है, जो उपधान में निरत रहता है, जो प्रियकारी है तथा जो प्रिय बोलने वाला है, वही शिक्षा प्राप्त करने के योग्य होता है।

3. **जहा से तिमिर-विद्धंसे, उत्तिट्ठन्ते दिवायरे।**
   जलन्ते इव तेएण, एवं हवइ बहुस्सुए।। -11/24
   जैसे अन्धकार का विध्वंसक उदीयमान सूर्य तेज से जाज्वल्यमान होता है, वैसे ही बहुश्रुत अज्ञानान्धकारनाशक होकर तप के तेज से जाज्वल्यमान होता है।

बारहवाँ अध्ययन : हरिकेशीय

अध्ययन-सार गीतिका

कर्म से ही ब्रह्म बनते, कर्म से ही हीन हो,
शुद्धि अहम होती है मन की, रत्नत्रय में लीन हो।
हरिकेशबल-सा यज्ञ करलो, कर्म सब जल जायेंगे,
यज्ञ अन्तर का करे तो, सिद्धि का पद पायेंगे।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

हरिकेशबल मुनि का परिचय (मूल गाथाएँ- 1 एवं 2)

1 पूर्वजन्म के जातिमद से, निम्न जाति में आये,
बोधि पाकर इक घटना से, मुनि पथ को अपनाये,
क्षमा-त्याग की गाथा सुनकर, धर्म का मर्म निकालो।

2 बदसूरत थे हरिकेशबल, बन गये आतमज्ञानी,
सर्वोत्तम गुण के धारण की, महिमा सबने जानी,
साध्वाचार से शोभित मुनि को, वंदन कर गुण गा-लो।

भिक्षार्थ ब्राह्मणों के यज्ञमण्डप में जाना एवं याज्ञिकों द्वारा उनका उपहास (मूल गाथाएँ- 3 से 7)

3 यज्ञ-सदन पहुँचे भिक्षा को, तप-गोपित थी काया,
हँसी उड़ाकर बोले ब्राह्मण, कौन भूत ये आया,
मद नहीं अच्छा उच्च-वर्ण का, उससे कदम हटा-लो।

यक्ष के द्वारा मुनि का परिचयात्मक उत्तर (मूल गाथाएँ- 8 से 10)

4 मुनि के तप से आकर्षित हो, इक यक्ष बना अनुगामी,
महामुनि की देह में छिपकर, वचन कहे फिर नामी,
मुनिवर फिर भी मौन रहे थे, शान्त स्वभाव बना-लो।

5 ''मैं हूँ साधक भिक्षा-जीवी, किंचित भी नहीं लोभी,
बहुत यहाँ आहार बना है, बचा मिले मुझको भी,
कृषक तुल्य सम भिक्षा देकर, पुण्य की फसल उगा-लो।''

याज्ञिक प्रमुख द्वारा भिक्षा का निषेध (मूल गाथाएँ 11 से 13)

6 ''विद्यायुक्त विप्र ही होते, पुण्य क्षेत्र के वासी,
पात्र नहीं हो भिक्षा के तुम, क्षुद्र बने संन्यासी,
अन्न-पान नहीं हर्गिज देंगे, हमसे पिण्ड छुड़ा-लो।''

मुनि रूप में यक्ष द्वारा उत्तर (मूल गाथाएँ- 14 एवं 15)

7 ''हिंसादि से जुड़े विप्र भी, पाप-क्षेत्र ही होते,
वेदों का तुम अर्थ न जानो, शास्त्र भार ही ढ़ोते,
समता-साधक पुण्य क्षेत्र है, देकर लाभ उठा-लो।''

याज्ञिक का प्रत्युत्तर (मूल गाथा- 16)

8 ''शिक्षक के आगे भिखमंगे, क्यों बढ़-चढ़ कर बोला,
सड़ जायेगा भोजन फिर भी, नहीं मिले इक तोला,
क्रोध में आकर अपशब्दों को, मुख से नहीं निकालो।''

यक्ष द्वारा पुनः आहार-दान की प्रेरणा (मूल गाथा- 17)

9 ''समिति-गुप्ति से योजित, इन्द्रियजयी हूँ याचक,
निर्दोष दान नहीं देते तो, कैसे यज्ञ हो सार्थक,
सुपात्र दान की महिमा भारी, देकर पुण्य कमा-लो।''

याज्ञिकों द्वारा मुनि को बाहर जाने के लिए कहना
(मूल गाथा- 18 एवं 19)

10 याज्ञिक ने आवेश में आकर, छात्रजनों को पुकारा,
कण्ठ पकड़ कर बाहर करने, मुनिवर को फिर मारा,
गहरी चोट सही समता से, चित्त में क्षमा बसा-लो।

राजपुत्री भद्रा द्वारा क्रुद्ध कुमारों को शिक्षा
(मूल गाथाएँ- 20 से 23)

11 उसी काल याज्ञिक की पत्नी, भद्रा ने यह देखा,
करने लगी शान्त सभी को, मन में दुःख की रेखा,
कथन किया मुनिवर के गुण का, हित की बात पचा-लो।

12 ''देवयोग से नृप ने मुझको, अर्पित इन्हें कराया,
सुरवर पूजित ब्रह्मव्रती को, किंचित नहीं सुहाया,
अपमानित हो भस्म न कर दे, मन मे बात जमा-लो।''

यक्षों द्वारा छात्रों की दुर्दशा एवं भद्रा का उनको पुनः प्रबोध (मूल गाथाएँ- 24 से 28)

13 कुपित बने यक्षों ने रोका, रौद्र बने छात्रों को,
मार गिराया कर दिये उनके, क्षत-विक्षत गात्रों को,
कथन किया भद्रा ने तब फिर, दिल में उसे बिठा-लो।

14 ''भिक्षु का अपमान है करना, नख से शैल खुरचना,
लोह चबाना दातों से और, पाँव से आग कुचलना,
जीवन अपना चाहते हो तो, इनकी शरण थमा-लो।''

छात्रों की दशा देख सपत्नीक याज्ञिक द्वारा क्षमा याचना (मूल गाथाएँ- 29 से 31)

15 दारुण दशा देख छात्रों की, सोमदेव घबराए,
भद्रा संग जा मुनि से बोले, भंते! माफ कराएँ,
ऋषिजन कुपित नहीं होते हैं, दयाभाव दिखला-लो।

मुनि द्वारा ब्राह्मणों को समाधान (मूल गाथा- 32)

16 ''रोष नहीं किंचित भी मुझको, आगे कभी न होगा,
यक्ष यहाँ जो सेवा करता, उसने मारा होगा,
इसमें मेरी नहीं प्रेरणा, राग-द्वेष ना पालौ।''

ब्राह्मणों द्वारा आहार ग्रहण करने की प्रार्थना
(मूल गाथाएँ- 33 एवं 34)

17 ''धर्म-अर्थ के ज्ञाता मुनिवर, शरण तिहारी आये,
सर्वजीवों के रक्षक पूज्यवर, तेरे वचन सुहाये,
अनुग्रह कर अब भिक्षा ले लो'', दान की महिमा गा-लो।

मुनि द्वारा आहार ग्रहण एवं देवों द्वारा दिव्य उद्घोष
(मूल गाथाएँ- 35 से 37)

18 मास-खमण का पारणक था, आहार मुनि ने पाया,
देवों ने महिमा गाने को, अहोदानम् गुंजाया,
तप की महिमा जान इसे अब, जाति भरम मिटा-लो।

मुनि का ब्राह्मणों को उपदेश (मूल गाथाएँ- 38 से 47)

19 ''यज्ञ क्रिया में पाप बन्ध है, शुद्धि नहीं अन्तर की,
आश्रव रोक आराधन करलो, अहिंसादि संवर की,
दहन जहाँ हो कर्म-शत्रु का, ऐसा यज्ञ करा-लो।''

20 ''जीवात्मा ही यज्ञकुण्ड है, तप ही उसका अगन है,
मन-वच-काया योग पात्र है, कर्म वहाँ ईंधन है,
तन है कण्डा अरु संयम का, शान्ति पाठ पढ़ा-लो।''

21 ''धर्म सरोवर शुद्धि करन को, ब्रह्म शान्ति तीरथ है,
अवगाहन कर निर्मल होते, राग-द्वेष छीजत है,
सच्चा रूप यज्ञ का जानो, सत्य धर्म अपना-लो।''

सूक्तियाँ

1. **सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो, न दीसई जाइ विसेस कोई।** -12/37

   तप की महिमा तो प्रत्यक्ष है, जाति की कोई नहीं।

2. **जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं, न तं सुदिट्ठं कुसला वयंति।** -12/38

   जो बाह्य शुद्धि को खोजते हैं, उन्हें कुशल पुरुष सम्यग्द्रष्टा नहीं कहते।

3. **महाजयं जयई जन्नसिट्ठं।** -12/42

   कर्मशत्रुओं पर (अथवा वासनाओं पर) विजय पाने वाला यज्ञों में श्रेष्ठ यज्ञ करता है।

4. **तवो जोई जीवो जाइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं।**
   कम्म एहा संजमजोग सन्ती, होमं हुणामी इसिणं पसत्थं।। -12/44

   तप अग्नि है, जीवात्मा अग्निकुण्ड है, मन-वचन-काया की शुभ प्रवृत्तियाँ घृत डालने की कुड़छियाँ हैं, शरीर अग्नि प्रदीप्त करने के कण्डे हैं, कर्म ईंधन हैं, संयम की प्रवृत्ति शांतिपाठ है। ऋषियों के लिए यही प्रशस्त यज्ञानुष्ठान है।

5. **धम्मे हरए बंभे संतितित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे।**
   जहिंसिण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं।। -12/46

   धर्म मेरा जलाशय है, ब्रह्मचर्य शांति तीर्थ है जो निर्मल है, जिसमें अवगाहन करने से आत्मा प्रशस्त लेश्या वाली हो जाती है, विमल हो जाती है, विशुद्ध हो जाती है और मैं संताप रहित शान्त होकर कर्मरूप दोष को दूर करता हूँ।

तेरहवाँ अध्ययन : चित्त-सम्भूतीय

अध्ययन-सार गीतिका

आत्म-शुद्धि के लिए ही, ध्यान तप की साधना,
तप के फल की कामना है, मुक्ति-पथ की वंचना।
मृत्यु आने पर स्वजन और, बन्धु-बांधव छोड़ते,
सम्भूत सी चर्या रही तो, आगे दुःख में डोलते।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

चित्त-सम्भूति का पूर्व भव के बाद इस भव में आना

(मूल गाथाएँ- 1 एवं 2)

1 पूर्व भव में चित्त-सम्भूति, मुनिवर थे तपधारी,
सम्भूत मुनि को रानी के जब, केश लगे सुखकारी,
चित्त ने तब उनको समझाया, तप का पुण्य कमा-लो।

2 चित्त मुनि की बात न मानी, भोग चाह में आकर,
मिले मुझे तप के बदले में, चक्री के सुख सागर,
तप के फल में भोग की इच्छा, तज संसार घटा-लो।

3 प्रीत पुरानी पूर्व भवों की, इस भव में भटकाई,
सम्भूति ने इस भव पाई, चक्री की प्रभुताई,
चित्त मुनि ने संयम धारा, कर्म का भार हटा-लो।

सम्भूति (ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती) और चित्त मुनि का समागम (मूल गाथाएँ- 3 से 7)

4 नृत्यगीत में लीन ब्रह्मदत्त, यादें पूर्व की आईं,
चित्त मुनि से मिलने आतुर, जो पहले था भाई,
पाप-पुण्य की उनकी चर्चा, सुनकर ज्ञान बढ़ा-लो।

चित्त और सम्भूति (ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती) के मिलन पर संवाद (मूल गाथाएँ 8 से 12)

5 निदान किया था तुमने राजन्, हुआ वियोग हमारा,
चक्री बोला शुभ कर्मों से, पाया भोग पसारा,
विरक्त बनो इनसे अब राजन्, शील गुणों को पालौ।

सम्भूति (ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती) द्वारा चित्त मुनि को भोगों के लिए आमन्त्रण (मूल गाथाएँ- 13 एवं 14)

6 रम्य महल धन-धान्य पूर्ण है, चित्त मुनि स्वीकारो,
नाट्य-गीत नारी सुख भोगो, कुछ ना और विचारो,
निकले तब उद्गार मुनि के, भोग का जीवन टाळौ।

चित्त मुनि द्वारा भोगों को त्यागने की प्रेरणा
(मूल गाथाएँ 15 से 26)

7 भार-भूत आभूषण समझो, गीत विलाप सरीखे,
विडम्बनामय नाटक सारे, पापों के फल तीखे,
काम-भोग दुःखदायी राजन्, उनसे राग हटा-लो।

8 अधम से उत्तम जाति मिली है, शुभ कर्मों का फल है,
क्षणिक सुखों को तज अपनाओ, श्रमण धर्म मंगल है,
क्रूर मृत्यु कब आ जायेगी, कल पर बात न टाळौ।

9 मित्र-शत्रु-परिचित रिश्ते सब, कोई काम न आए,
किये कर्म का फल तो राजन्, जीव अकेला पाए,
कर्म करे कर्त्ता का पीछा, पुण्य से पुण्य कमा-लो।

10 भौतिक वैभव धरा रहेगा, जब होगा जाना परभव,
देह जलाकर सब लौटेंगे, क्या पत्नी और बांधव,
मार बुरी है पापकर्म की, दुष्कर्मों को टाळौ।

ब्रह्मदत्त द्वारा भोगों को त्यागने की असमर्थता

(मूल गाथाएँ 27 से 30)

11 समझ रहा हूँ बाते मैं पर, काम-भोग दुर्जय है,
धर्म जानकर पाप न छूटे, कैसा यह विस्मय है?
ऐसे दल-दल में फँसने से, निज को सदा बचा-लो।

मुनि द्वारा ब्रह्मदत्त को आर्य कर्म की प्रेरणा

(मूल गाथाएँ- 31 एवं 32)

12 संयम जीवन जी न सको तो, आर्य कर्म अपनालो,
प्राणिमात्र पर करुणा करके, दुर्गति को तो टाळौ,
आखिर काम-भोग भी छूटे, सच्ची बात पचा-लो।

भोगासक्त ब्रह्मदत्त से मुनि निराश (मूल गाथाएँ 33 से 35)

13 भोग त्यागने की बुद्धि नहीं, लगती है तेरी राजन्,
व्यर्थ दिया उपदेश तुम्हें, अब जाता अपने केतन,
सिद्धि पाई चित्त मुनि ने, चक्री नरक सम्भालो।

सूक्तियाँ

1. **सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडम्बियं।**
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा।। -13/16

सब गीत विलाप रूप है, सभी नाटक विडम्बना रूप है, समस्त आभूषण भार रूप है और सभी काम-भोग दुःखदायक है।

2. **बालाभिरामेसु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेसु रायं।**
विरत्तकामाण तवोधणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं।। -13/17

मूढ़जनों के लिए रमणीय किन्तु दुःखावह काम-भोगों में वह सुख नहीं है, जो सुख शील गुणों में रत, काम-भोगों से विरक्त तपोधन भिक्षुओं को प्राप्त होता है।

3. **इह जीविए राय! असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणो।**
से सोयई मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परंसि लोए।। -13/21

इस अनित्य मानव जीवन में जो विपुल पुण्यकर्म नहीं करता अर्थात् शुभ अनुष्ठान नहीं करता, वह मृत्यु के मुख में पहुँचने पर पश्चाताप करता है। वह धर्माचरण न करने के कारण परलोक में भी पश्चाताप करता है।

4. **कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं।** -13/23

कर्म कर्त्ता का ही अनुसरण करते हैं।

5. **उविच्च भोगा पुरिसं चयंति, दुमं जहा खीण फलं व पक्खी।** -13/31

काम-भोग क्षीण पुण्य वाले व्यक्ति को वैसे ही छोड़ देते हैं, जैसे क्षीण फल वाले वृक्ष को पक्षी छोड़ देते हैं।

6. **जइ तं सि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं।**
धम्मे ठिओ सव्व-पयाणुकंपी।। -13/32

यदि भोगों का सर्वथा त्याग करने में असमर्थ हो तो कम से कम आर्य कर्म तो करो और धर्म में स्थिर होकर समस्त प्राणियों के प्रति अनुकम्पाशील बनो।

चौदहवाँ अध्ययन : इषुकारीय

अध्ययन-सार गीतिका

अंगजात भी त्राण नहीं दे, काम-भोग दुःख देते,
बन्ध बढ़ाते राग-द्वेष हैं, शरण कोई ना देते।
समय लौट करके नहीं आता, पापकर्म क्यों बोयें ?
भृगुपुत्र-से बुद्ध बनें, बिना समय को खोयें।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

भृगु पुरोहित के परिवार का परिचय

(निर्युक्तिकार के अनुसार एवं मूल गाथाएँ 1 से 3)

1 राजमान्य था भृगु पुरोहित, पत्नी यशा थी सुन्दर,
वैभव था पर पुत्र नहीं था, दुःख था मन के अन्दर,
प्रेरक गाथा छः आत्मा की, सुनकर बोधि जगा-लो।

2 श्रमण वेष में दो देवों ने, कहा भृगु से सुन-लो,
जन्मेंगे दो पुत्र तुम्हारे, खुशियाँ मन में भर-लो,
लेकिन होंगे दीक्षित दोनों, बाधा कोई न डालो।

3 जन्म लिया फिर उन देवों ने, भृगु के घर में आकर,
समझाया भृगु ने पुत्रों को, रहना साधु से डरकर,
करे क्रूरता बालक संग वे, उलटी सीख को टाळौ।

4 खेल रहे थे इक दिन दोनों, देखा मुनिजन आते,
चढ़ गये एक पेड़ पर भय से, खुद को उनसे छिपाते,
करुणाभीगी मुनिचर्या से, भय की धुंध हटा-लो।

5 मुनिजन ने आहार किया तब, बच्चों ने उनको देखा,
सात्त्विक था आहार सभी का, नहीं द्वेष की रेखा,
मिट गये सारे भय बच्चों के, मन में शान्ति बसा-लो।

6 पूर्व-जन्म का ज्ञान हुआ जब, देखी मुनि की करुणा,
तरुतल आकर करी वन्दना, शुद्ध भावों का झरना,
संतों से सद्बोध को पाकर, जीवन साज़ सजा-लो।

विरक्त पुरोहित कुमारों की पिता से दीक्षा की अनुमति देने की प्रार्थना (मूल गाथाएँ- 4 से 7)

7 जन्म-जरा-मृत्यु के भय से, आकुलता दिल छाई,
जन्म-मरण का चक्र तोड़ने, साधकता मन भायी,
अनासक्त बन काम-भोग से, सारे दुःख मिटा-लो।

8 थोड़ी है आयुष्य यहाँ और, रोग-विघ्न हैं सारे,
मुनिचर्या अपना करके अब, मुनि-पथ को सम्भारें,
मात-पिता की अनुमति पाकर, दीक्षा-पथ सम्भालो।

भृगु पुरोहित का पुत्रों को प्रव्रज्या से रोकना
(मूल गाथाएँ 8 एवं 9)

9 बिना पुत्र के मुक्ति न होती, कहते वेद विज्ञाता,
पढ़ो वेद और ब्रह्मभोज दो, रमणी से हो नाता,
गृहीभार पुत्रों को दे फिर, अरण्यवास बिता-लो।

पुरोहित पुत्रों का पिता को समाधान

(मूल गाथाएँ- 10 से 17)

10 वेद ज्ञान नहीं रक्षा करता, ब्रह्मभोज ना तारे,
पुत्र कभी सद्गति नहीं देते, धर्माचरण उबारे,
कैसे मानें बात आपकी, इनको दिल से निका-लो।

11 काम-भोग क्षण का सुख देते, दीर्घकाल दुःख देते,
मुक्ति में होते हैं बाधक, अशुभ जानकर चेतें,
तृष्णा की अग्नि में जलकर, खुद को आज बचा-लो।

12 धर्मधुरी के अधिकारी को, भोग न लगते अच्छे,
भिक्षा का आश्रय ले विचरें, अणगारी बन सच्चे,
निःस्पृह गुण के धारक बनकर, सारी चाह मिटा-लो।

पुरोहित का कथन- इन्द्रियों के साथ आत्मा का नष्ट होना

(मूल गाथा- 18)

13 बनती देह पंचभूत से, चेतन उत्पन्न होता,
देह नाश के साथ जानलो, चेतन सत्ता खोता,
भृगु ने कथन किया पुत्रों से, मिथ्या मैल निकालो।

पुत्रों का उत्तर- आत्मा अमूर्त्त नित्य

(मूल गाथाएँ- 19 से 25)

14 इन्द्रियाँ जान नहीं सकती है, निराकार चेतन को,
राग-द्वेष भावों से चेतन, पाता भव-बन्धन को,
अमूर्त सदा शाश्वत होता है, बन्ध के हेतु छुड़ा-लो।

15 अब तक रोका अब न रहेंगे, मोह किया था हमने,
धर्म से हम अनजान रहे थे, पाप लगे अब दुःखने,
मत दोहराओ पापकर्म को, कल पर बात न टाळौ।

16 जरा-मृत्यु से पीड़ित जग है, बीती रात न आती,
धर्मी की जो रातें बीती, सफल सभी हो जाती,
धर्म बिना निष्फल सब रातें, मन में इसे जमा-लो।

पुरोहित का पुत्रों को समझाना- ढलती आयु में दीक्षा लेना (मूल गाथा- 26)

17 पहले हम सब साथ रहेंगे, फिर व्रत को धारेंगे,
दीक्षित होंगे वृद्ध होने पर, निराबाध विचरेंगे,
बात मानलो पुत्रों मेरी, संशय सभी निकालो।

पुत्रों का उत्तर- कल की प्रतीक्षा न करें
(मूल गाथाएँ- 27 एवं 28)

18 कल पर करे भरोसा वो ही, जाने मैं तो मरूँ नहीं,
या मृत्यु संग जिसकी मैत्री, उससे कोई डरूँ नहीं,
पल भर भी अब देर करो ना, संयम भाव जगा-लो।

प्रबुद्ध पुरोहित का पत्नी से कथन
(मूल गाथाएँ- 29 से 32)

19 पुत्रों से बोधित हो भृगु ने, पत्नी से कथन किया,
पुत्र बिना क्या शोभा अपनी, पंख बिना जिम चिड़िया,
उचित नहीं अब घर में रहना, संयम दीप जला-लो।

20 भोग भरी मनुहार को सुनकर, पत्नी को समझाया,
आस नहीं परभव के सुख की, समता धर्म सुहाया,
व्यर्थ गया जीवन भोगों में, अब तो सार निकालो।

पुरोहित पत्नी का उत्तर (मूल गाथा- 33)

21 थक जाओगे मुनिचर्या में, याद करोगे घर की,
भोगो भोग संग में मेरे, तज दो भिक्षा दर की,
प्रतिस्रोत में बहने के उस, दुःख का भान करा-लो।

पुरोहित पत्नी की शंकाओं का समाधान

(मूल गाथाएँ- 34 एवं 35)

22 सर्प केंचुली जैसे छोड़े, चले पुत्र इस घर से,
क्यों न बनूँ उनका अनुगामी, संयम को मन तरसे,
कामगुणों को त्याग सर्वथा, भिक्षा पथ अपना-लो।

प्रबुद्ध पुरोहित पत्नी, पुत्रों और पति के साथ दीक्षा लेने को तैयार

(मूल गाथा- 36)

23 पति, पुत्र को देख यशा ने, अपना मन समझाया,
मोह जाल को काट चले ये, क्यों घर मुझे सुहाया?
चलो संग में पति-पुत्र के, घर का मोह भगा-लो।

कमलावती रानी द्वारा इषुकार राजा को प्रतिबोध

(मूल गाथाएँ- 37 से 48)

24 सुत-वनिता संग चला पुरोहित, संयम पथ अपनाने,
सुनी बात जब राजा ने तो, लुब्ध हुआ धन पाने,
त्यक्त संपत्ति राजकोष की, इसका लोभ हटा-लो।

25 रानी बोली क्यों चाहते हो, परित्यक्त उस धन को,
धन ही नहीं तजा है उसने, छोड़ दिया परिजन को,
वमन किये को क्यों खाते हो, अपकीर्ति को टाळौ।

26 जग का सारा धन मिल जाये, फिर भी होगा कमती,
रक्षा नहीं कर पाये वो भी, कभी न देगा तृप्ति,
धन-जन की आसक्ति छोड़ो, अपना मन समझा-लो।

27 काम-भोग सब छोड़ मरोगे, कोई न होगा त्राता,
मृत्यु आने पर हे राजन्! धर्म ही है परित्राता,
अन्य नहीं कोई भी रक्षक, धर्म-ध्वजा फहरा-लो।

28 पिंजरे के पंछी ज्यों मुझको, ये जग बन्धन लगता,
तोड़ मोह मैं बनूँ अकिंचन, लाऊँ मन में सरलता,
आरम्भ परिग्रह से निवृत्त हो, संयम स्वाद चखा-लो।

29 अन्य को जलते देख आग में, ईर्ष्यालु हर्षाते,
राग-द्वेष से जलता जग ये, क्यों नहीं मन समझाते,
पक्षी सम आकाश में उड़कर, खुद को मुक्त करा-लो।

30 मुख में माँस दबाये पक्षी, अन्य से पीड़ा पाए,
माँस-पिण्ड तज देने पर वो, निराकुल हो जाए,
भोगरूप आमिष को छोड़ो, निर्भय कदम बढ़ा-लो।

31 गिद्ध समा ये काम-भोग हैं, भव का भ्रमण बढ़ाते,
साँप गरुड़ से डर कर जैसे, शंकित हो कतराते,
वैसे यतना से जी करके, दुष्कर्मों से बचा-लो।

32 जैसे बन्धन तोड़ के हस्ती, चलते अपने घर को,
कर्म काट कर वैसे ही हम, पावें अब अक्षर को,
ज्ञानीजन कहते हे राजन्! श्रेय पंथ अपना-लो।

राजा और रानी प्रबुद्ध बन दीक्षा के लिए तैयार
(मूल गाथाएँ- 49 और 50)

33 रानी की ललकार सुनी तो, राजा का मन जागा,
दुर्जय काम-भोग सब छोड़े, धन-वैभव भी त्यागा,
श्रुत-चारित्र धर्म अपना कर, पौरूष भाव जगा-लो।

छः व्यक्तियों की मुक्ति (मूल गाथाएँ- 51 से 53)

34 युगल पुत्र संग भृगु-यशा, और राजा-रानी सारे,
अनित्य भावना से भावित हो, सर्व दुःखों को टारे,
कथा-वार्ता को सुन करके, शाश्वत सुख को पा-लो।

सूक्तियाँ

1. **वेया अहीया न भवंति ताणं,**
भुत्ता दिया निंति तमंतमेण,
जाया य पुत्ता न हवंति ताणं। -14/12

पढ़े हुए वेद रक्षक नहीं होते, यज्ञ के लिए पशु-वध के उपदेशक द्विज भी भोजन कराने पर घोर अन्धकार में ले जाते हैं, अंगजात पुत्र भी त्राणरूप नहीं होते।

2. **खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा (कामभोगा)।** -14/13

ये काम-भोग क्षणमात्र के लिए सुखदायी होते हैं, जबकि चिरकाल तक दुःख देते हैं।

3. **परिव्वयंते अणियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे।** -14/14

जो काम से निवृत्त नहीं है, वह अतृप्ति की ज्वाला से संतप्त होता हुआ दिन-रात भटकता फिरता है।

4. **नो इन्दियग्गेज्झ अमुत्तभावा, अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो।**
अज्झत्थ हेउं नियय ऽस्स बन्धो, संसार हेउं च वयन्ति बन्धं।। -14/19

आत्मा अमूर्त्त है, वह इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है। जो अमूर्त्त होता है वह नित्य होता है। आत्मा के आन्तरिक दोष (रागद्वेषादि या मिथ्यात्वादि) के कारण ही उसके बन्ध होता है और बन्ध ही संसार का हेतु कहा गया है।

5. **जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।**
अहम्मं कुणमाणस्स, अफल जंति राइओ।। -14/24

जो जो रात्रियाँ (और दिन) बीती जा रही हैं वे लौट कर वापिस नहीं आती। अधर्म करने वाले की रात्रियाँ निष्फल हो जाती है।

6. **जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायणं।**
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया।। -14/27

जिसकी मृत्यु के साथ मैत्री हो अथवा जो मृत्यु आने पर भाग कर बच सकता हो या जो यह जानता हो कि मैं कभी मरूँगा ही नहीं, वही सोच सकता कि आज नहीं, कल धर्माचरण कर लूँगा।

7. **वन्तासी पुरिसो रायं! न सो होइ पंससिओ।** -14/38

हे राजन्! जो वमन किये का उपभोग करता है, वह पुरुष प्रशंसनीय नहीं होता है।

8. **सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वावि धणं भवे।**
सव्वं पि ते अप्पज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव।। -14/39

सारा जगत् और जगत् का सारा धन भी यदि तुम्हारा हो जाए, तो भी वह सब तुम्हारे लिए अपर्याप्त ही होगा। वह तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता।

9. **मरिहिसि रायं! जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय।**
एक्को हु धम्मो नरदेव! ताणं, न विज्जई अन्नमिहेह किंचि। -14/40

हे राजन्! इन मनोज्ञ कामगुणों को छोड़कर जब या तब मरना होगा, उस समय धर्म ही एक मात्र त्राता होगा। हे नरदेव! यहाँ धर्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी रक्षक नहीं है।

10. **दवग्गिणा जहा रण्णे, डज्झमाणेसु जंतुसु।**
अन्ने सत्ता पमोयंति, रागद्दोसवसं गया।।
एवमेव वयं मूढ़ा, कामभोगेसु मुच्छिया।
डज्झमाणं न बुज्झामो, रागद्दोसऽग्गिणा जगं।। -14/42, 43

जैसे वन में लगे हुए दावानल में जलते हुए प्राणियों को देखकर अन्य जीव राग-द्वेष के वशीभूत होकर प्रमुदित होते हैं, उसी प्रकार काम-भोगों में मूर्च्छित हम मूढ़ लोग भी राग-द्वेष की अग्नि में जलते हुए जगत् को नहीं समझ रहे हैं।

11. **गिद्धोवमे उ नच्चाणं, कामे संसारवड्ढणे।**
उरगो सुवण्णपासे व, संकमाणो तणुं चरे।। -14/47

संसार को बढ़ाने वाले काम-भोगों को गिद्ध के समान जानकर उनसे वैसे ही शंकित होकर चलना चाहिए जैसे गरुड़ के निकट साँप शंकित होकर चलता है।

पन्द्रहवाँ अध्ययन : सभिक्षुक

अध्ययन-सार गीतिका

सद्-भिक्षु कौन होता ? दिव्य जिसकी साधना,
तत्त्ववेत्ता अभय है वो, प्रबल संयम पालना।
अप्रमादी निष्कपट है, शेष ना कोई कामना,
ग्रन्थियों को भेद कर, संबुद्ध जिसकी चेतना।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

सद्भिक्षु के लक्षण- सरलतादि (मूल गाथा- 1)

1 भिक्षु वही जो सरल मुमुक्षु, नहीं निदान की इच्छा,
राग न पालै संस्तव छोड़े, अज्ञात बना ले भिक्षा,
अप्रतिबद्ध विहार करे जो, उनकी महिमा गा-लो।

शास्त्रज्ञ, परीषहजयी, आत्मरक्षक (मूल गाथाएँ- 2, 3, 4)

2 आत्म-रक्षक प्रज्ञाधारी, जिनवाणी का ज्ञाता,
राग मुक्त हो परीषह जीते, सदाचार अपनाता,
आत्म-तुल्य हैं प्राणी सारे, मूर्च्छाभाव हटा-लो।

3 सर्दी-गर्मी शय्या-आसन, मच्छर कभी सताये,
आकुलता नहीं लाये मन में, समता धर्म निभाये,
सहन करे उपसर्गों को जो, उनको शीश झुका-लो।

आत्मगवेषी, कुतुहल रहित (मूल गाथाएँ 5 से 7)

4 वंदन-पूजा और प्रशंसा, नहीं सत्कार भी भाये,
संयत-सुव्रत और तपस्वी, सबके हित को चाहे,
आत्मगवेषी होता भिक्षु, अन्तर मन चमका-लो।

5 मोह कर्म का बन्ध जहाँ हो, उनकी संगत छोड़े,
लौकिक विद्याओं से अपनी, जीविका नहीं जोड़े,
करे न कोई कौतुक भिक्षु, पाप सूत्र को टाळौ।

पीड़ित होने पर स्वजन शरण नहीं जाना
(मूल गाथाएँ- 8 एवं 9)

6 मंत्र-मूल औषध से कोई, नहीं उपचार बताता,
रोगादि से आतुर होकर, स्वजन शरण नहीं जाता,
श्लाघा-निन्दा करे न भिक्षु, हेय समझ के टाळौ।

लौकिक फल की अचाहत (मूल गाथाएँ- 10 से 12)

7 लौकिक फल की चाहत में, संग नहीं वो करता,
भिक्षा कोई न भी दे तो, समता में वो रहता,
ज्ञान-दान ही करता भिक्षु, ज्ञान का दीप जला-लो।

नीरस आहार की निन्दा नहीं करना
(मूल गाथाएँ- 13 एवं 14)

8 नीरस भोजन मिले या पानी, निन्दा कभी न करता,
प्रान्तकुलों से भिक्षा लेता, समभावों में रहता,
सुनकर रौद्र गर्जना कोई, मन में भय न पालौ।

अन्य दर्शनों को जानकर भी संयमी (मूल गाथा- 15)

9 अन्य मतों का ज्ञाता फिर भी, संयम में थिर रहता,
परम अर्थ का ज्ञाता सबको, अपने जैसा समझता,
करे अनादर नहीं अन्य का, मन को शान्त बना-लो।

अल्पकषायी इन्द्रियजेता (मूल गाथा- 16)

10 जीविका नहीं शिल्प कर्म से, अणगारी बन रहता,
इन्द्रियजेता अल्पकषायी, मित्र-शत्रु नहीं रखता,
सदाचरण से विचरण करके, सद्भिक्षु कहला-लो।

सूक्तियाँ

1. **पन्ने अभिभूय सव्वदंसी, जे कम्हिचि न मुच्छिए स भिक्खू।** -15/2

   जो प्राज्ञ है, जो राग-द्वेष को पराजित कर सर्व प्राणियों को आत्मवत् समझता है एवं जो किसी भी (सचित्त-अचित्त) पदार्थ में आसक्त नहीं होता है, वह भिक्षु है।

2. **अव्वगमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू।** -15/3

   जिसका मन व्याकुल अथवा अशुभ ध्यान में लीन नहीं है, जो दूसरों पर आक्रोश करने या करवाने में हर्षित नहीं होता अर्थात् हर्षातिरेक से रहित है, जो सब कुछ समभाव से सहन करता है, वह भिक्षु है।

3. **जे संजए सुव्वए तवस्सी, सहिए आयगवेसए स भिक्खू।** -15/5

   जो संयत है, सुव्रती है, तपस्वी है, सम्यग्ज्ञान-क्रिया से युक्त है और शुद्ध आत्म-स्वरूप का साधक है, वह भिक्षु है।

4. **तेसिं इहलोइय-फलट्ठा, जो संथवं न करेइ स भिक्खू।** -15/10

   जो इहलौकिक फल की प्राप्ति हेतु गृहस्थों से परिचय नहीं करना अर्थात् वस्त्र, पात्र, भिक्षा, प्रसिद्धि, प्रशंसा आदि के लिए मेल-जोल नहीं करता है, वह भिक्षु है।

सोलहवाँ अध्ययन : ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान

अध्ययन-सार गीतिका

ब्रह्मचारी की सभी है, सफल होती साधना,
त्यागकर मैथुन वृत्ति को, व्रत नियम की पालना।
आत्मभावों में रमण ही, ब्रह्मव्रत की पूर्णता,
देव-दानव नमन करते, जान उनकी श्रेष्ठता।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

ब्रह्मचर्य समाधि स्थानों के अभ्यास का निर्देश

(मूल गाथाएँ- 1 एवं 2)

1 निग्रन्थ धर्म में बतलाये हैं, ब्रह्म समाधि साधन,
सम्यक् आराधन से होता, भिक्षु व्रत का पालन,
उनको सुनकर और समझ कर, धर्म का मर्म निकालो।

2 शीलव्रती नहीं होता केवल, तन आसक्ति तजना,
शुभ भावों से भावित होना, अन्तर शुद्धि करना,
संयम-संवर की चर्या से, ब्रह्म समाधि पा-लो।

3 सभी इन्द्रियों का संयम हो, पापों के वर्जन में,
निश्चय से तो ब्रह्म समाधि, होती आत्म रमण में,
साधन की शुद्धि के बल पर, सिद्धि साध्य बना-लो।

4 ब्रह्म समाधि के प्रभुवर ने, दस स्थान बतलाये,
एक कोट नौ बाड़ें हैं और, रक्षा हित समझाये,
दुर्जय काम-भोग को तज के, इनको पीठ दिखा-लो।

दस ब्रह्मचर्य समाधि स्थान (मूल गाथाएँ- 3 से 12)

5 नहीं मिले एकान्त नार से, ना बैठे उनके आसन,
कथा करे ना रूप-रंग की, नहीं हो संग एकासन,
चक्षु गृद्धि रखो न उनसे, शब्द गृद्धि भी टाळौ।

6 याद करे नहीं पूर्व भोग को, सरस भोज ना खाये,
अधिक नहीं खाना-पीना हो, तन को नहीं सजाये,
शब्द-रूप-रस-गन्धादि से, आसक्ति को हटा-लो।

ब्रह्मचर्य समाधि-भंग के दुष्परिणाम

7 निष्ठा से जो ब्रह्मव्रतों का, पालन है नहीं करता,
उसके ऊपर होती शंका, कामेच्छा को बढ़ाता,
धर्म-भ्रष्ट भी हो जाते हैं, पापों का शूल निकालो।

ब्रह्मचर्य समाधि की फलश्रुति (मूल गाथाएँ 15 से 17)

8 ब्रह्मचर्य का दुष्कर व्रत जो, निष्ठावान निभाते,
सुर-असुर सब वंदन करते, उनकी महिमा गाते,
सिद्ध अनेकों हुए पाल के, सिद्धि का सुख पा-लो।

सूक्तियाँ

1. **इमे खलु ते थेरेहिं भगवन्तेहिं दस बंभचेरसमाहिठाणा पन्नता-**
   1. **विवित्ताइं सयणासणाइं सेविज्जा,**
   2. **नो इत्थीणं कहं कहित्ता हवइ,**
   3. **नो इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहिरित्ता हवइ,**
   4. **नो इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता, निज्झाइत्ता हवइ,**
   5. **नो इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुइयसद्दं वा, रुइयसद्दं वा, गीयसद्दं वा, हसिससद्दं वा, थणियसद्दं वा, कंदियसद्दं वा, विलवियसद्दं वा, सुणेत्ता हवइ,**
   6. **नो निग्गन्थे पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ,**
   7. **नो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ,**
   8. **नो अइमायाए पाणभोयणं आहरेत्ता हवइ,**
   9. **नो विभूसाणुवाई हवइ,**
   10. **नो सद्द-रूव-रस-गन्ध-फासाणुवाई हवइ, से निग्गन्थे।** -16/3-12

स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य समाधि के ये दस समाधि स्थान बतलाये हैं-

1. जो विविक्त-एकान्त शयन और आसन का सेवन करता है,
2. जो स्त्रियों की कथा नहीं करता,
3. जो स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बैठता,
4. जो स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ाकर नहीं देखता, उसके बाद में चिन्तन नहीं करता,
5. जो मिट्टी की दीवार के अन्तर से, कपड़े के पर्दे के अन्तर से अथवा पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को नहीं सुनता,
6. जो गृहवास में की हुई रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण नहीं करता,

7. जो प्रणीत अर्थात् रसयुक्त पौष्टिक आहार नहीं करता,
8. जो मात्रा से अधिक भोजन-पानी का सेवन नहीं करता,
9. जो शरीर की विभूषा नहीं करता और
10. जो शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त नहीं होता, वह निर्ग्रन्थ है।

2. **देव-दाणव-गन्धव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा।**
बम्भयारिं नमंसन्ति, दुक्करं जे करन्ति तं।। -16/16

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर ये सभी उसको नमस्कार करते हैं, जो दुष्कर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हैं।

3. **एस धम्मे धुवे निअए, सासए जिणदेसिए।**
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेण, सिज्झिस्सन्ति तहावरे।। -16/17

यह ब्रह्मचर्य-धर्म ध्रुव, नित्य, शाश्वत और अर्हत् के द्वारा उपदिष्ट है। इसका पालन कर अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं और भविष्य में भी होंगे।

सत्रहवाँ अध्ययन : पापश्रमणीय

अध्ययन-सार गीतिका

ले प्रव्रज्या सिंहवृत्ति से, पर न वैसी पालना,
बनके स्वेच्छाचारी फिरना, श्रमणचर्या टालना।
गुरुजनों से व्यर्थ वह, करता रहे प्रतिवाद है,
पापी श्रमण को अन्त में, केवल मिले अवसाद है।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

पाप श्रमण- ज्ञानाचार में प्रमादी (मूल गाथाएँ- 1 से 3)

1 धर्म श्रवण कर विनय युक्त हो, श्रमण रूप अपनाता,
लेकर दीक्षा बने स्वछन्दी, सुखभोगी बन जाता,
सिंहवृत्ति से संयम लेकर, शिथिलाचार हटा-लो।

2 मिला उपाश्रय है रहने को, वस्त्रों का क्या कहना?
प्रियकारी भोजन मिलता तो, पढ़ने से क्या करना?
दृश्य जगत् में जान रहा हूँ, ऐसी दुर्मति टाळौ।

3 संयम जीवन में आकर भी, अधिक नींद सहलाता,
मनवांछित भोजन करके वह, दिन में भी सो जाता,
ऐसा पाप श्रमण कहलाता, जान के शूल निकालो।

पाप श्रमण- दर्शनाचार में प्रमादी

(मूल गाथाएँ- 4 एवं 5)

4 श्रुत-विनय जिनसे सीखा है, उनकी निंदा करता,
करे न सेवा भक्ति उनकी, पूज्य-भाव नहीं रखता,
खुद को श्रेष्ठ समझना छोड़ो, अपना अहं निकालो।

पाप श्रमण- चारित्राचार में प्रमादी

(मूल गाथाएँ- 6 से 14)

5 संयम के लक्षण नहीं दिखते, प्राणों की हानि करता,
फिर भी माने निज को साधु, झूठी दुनिया में पलता,
ऐसे अपराधी जीवन से, खुद को आज बचा-लो।

6 बिना प्रमार्जन आसन बैठे, जल्दी-जल्दी चलता,
करे न पालन मर्यादा का, अति क्रोधी है रहता,
बिना ध्यान प्रतिलेखन करता, यतना कर्म निभा-लो।

7 प्रतिलेखन में बने प्रमादी, वस्त्र-पात्र बिखेरे,
शिक्षा जब गुरुवर देते तो, उलटा उनको घेरे,
तिरस्कार ना करो गुरु का, उनका कर्ज चुका-लो।

8 मायावी वाचाल ढीठ है, नहीं नियन्त्रण खुद पर,
भक्त-पान में असंविभागी, गुरु प्रीति में बंजर,
ऐसी पापश्रमणता से बच, गुरु से प्रेम जगा-लो।

9 सदाचार से शून्य ही होता, शान्त कलह भड़काता,
कदाग्रही बनकर तर्कों से, अपनी प्रज्ञा गँवाता,
थिरता नहीं आसन में उसकी, ऐसी कुमति टाळौ।

10 शय्या प्रतिलेखन नहीं करता, बिना प्रमार्जन सोता,
यतना नहीं चर्या में कोई, सदा प्रमादी होता,
पाप लिप्त वह साधु होता, उसका संग छुड़ा-लो।

पापश्रमण- तपाचार में प्रमादी (मूल गाथाएँ- 15 एवं 16)

11 विकृतकारी भोज करे नित, तप से दूर ही रहता,
सीख नहीं कोई भी सुनता, दिनभर खाता रहता,
उलटा दे उपदेश गुरु को, ऐसे दोष निकालो।

पापश्रमण- वीर्याचार में प्रमादी (मूल गाथाएँ- 17 से 20)

12 गुरुजनों में दोष बताकर, इतर गणों में जाता,
पर-घर में धन अर्जन करने, निमित्त ज्ञान बतलाता,
लिप्त नहीं हो उन धन्धों में, अपना धर्म सम्भालो।

13 स्वजन दिया आहार ही खाता, भिक्षा को नहीं जाता,
गेही के आसन पर बैठे, पापश्रमण कहलाता,
निमित्त सरस आहार नहीं हो, भिक्षावृत्ति निभा-लो।

14 पंचकुशीला साधु होता, मात्र वेष का साधक,
अधमातम होता मुनियों में, विष सम होता घातक,
निन्दित होता है इस जग में, भव-परभव को बचा-लो।

दोषत्यागी मुनि अमृत सम पूजित (मूल गाथा 21)

15 इन दोषों को जो तज देता, शुद्धाचारी होता,
अमृतमय होता है जग में, वह उपकारी होता,
आराधक वह उभयलोक में, वंदन कर गुण गा-लो।

सूक्तियाँ

1. **असंजए संजयमन्नमाणे, पावसमणे त्ति वुच्चई।** -17/6

   जो असंयमी होते हुए भी अपने को संयमी मानकर और अपराध करता है, वह पापश्रमण है।

2. **उल्लंघणे य चण्डे य, पावसमणे त्ति वुच्चई।** -17/8

   जो साधु मर्यादाओं का उल्लंघन करता है और अति क्रोधी है, वह पाप श्रमण है।

3. **गुरुं परिभावए निच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चई।** -17/10

   जो गुरु की सदा अवहेलना करता है, वह पापश्रमण है।

4. **वुग्गहे कलहे रत्ते, पापसमणे त्ति वुच्चई।** -17/12

   जो कदाग्रह और कलह में रत रहता है, वह पाप श्रमण है।

अठारहवाँ अध्ययन : संजयीय

अध्ययन-सार गीतिका

जग से जाना है अकेले, इससे ममता ना करो,
साथ जाते कर्म सारे, अशुभ कर्मों से डरो।
असत् है एकान्त दृष्टि, उससे बच करके चलो,
संजय मुनि ने जो किया, उससे शिक्षा ले चलो।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

संजय राजा का मृगयार्थ प्रस्थान (मूल गाथाएँ- 1 से 3)

1 करने को आखेट मृगों का, निकला संजय राजा,
मार दिया भयभीत मृगों को, फल का नहीं अन्दाजा,
मन परिवर्तन की है गाथा, सुनकर बोध जगा-लो।

मुनि को देखकर नृप का पश्चाताप (मूल गाथाएँ 4 से 10)

2 देखा ध्यानी मुनिवर को तो, होश उड़े तब उसके,
भस्म न कर दे तपो तेज से, मृग जो मारे इनके,
ध्यान खोल मुनिवर यों बोले, हिंसा भाव मिटा-लो।

मुनि द्वारा अभयदान एवं अनित्यादि का उपदेश

(मूल गाथाएँ- 11 से 17)

3 कोई न भय तुम मुझसे खाओ, देता अभय मैं तुमको,
हिंसा में क्यों लगे हुए हो, छोड़ चलोगे सबको,
क्षणभंगुर है जीवन जानो, अनित्य भावना भा-लो।

4 अनित्य है जीवन ये राजन्! क्यों तू पसारा करता,
मात-पिता-सुत-बांधव-दारा, साथ न कोई चलता
तेरा किया ही साथ चलेगा, चिन्तन ज्योत जला-लो।

5 बन्धु-बांधव परिजन भी, जीते जी के साथी,
साथ नहीं मरने पर जाते, चले कर्म की पाती,
तपश्चरण करके हे राजन्! तोड़ मोह को डालो।

संजय नृप विरक्त होकर प्रव्रजित (मूल गाथाएँ- 18 एवं 19)

6 मुनिवर के वचनों से राजा, बना मोक्ष अभिलाषी,
राज छोड़ के राजा बन गया, जिन शासन संन्यासी,
जैसे अभय मिला राजन् को, अभयदान दे डालो।

क्षत्रिय मुनि द्वारा संजय राजर्षि से जिज्ञासा

(मूल गाथाएँ 20 से 22)

7 कैसे परिवर्तन है आया, सहसा राजा के मन का,
क्षत्रिय मुनि के आने से, योग मिला परखन का
उनके प्रश्नों के उत्तर से, अन्तर भाव दिखा-लो।

8 संजय मेरा नाम है जानो, गोत्र मेरा है गौतम,
गर्दभाली मेरे गुरु हैं, मुक्ति का मेरा उपक्रम,
सेवा होती गुरु आज्ञा में, विनय भाव अपना-लो।

क्षत्रिय मुनि द्वारा सत्यासत्य की प्ररूपणा

(मूल गाथाएँ 23 से 26)

9 थिर करने नव दीक्षित को तब, वचन प्रभु के बतलाये,
चारों ही एकान्तवाद के, मिथ्यामत समझाये,
अनेकान्त की दृष्टि रखकर, सत्य-तथ्य अपना-लो।

10 एकान्तिक व्यक्ति के होते, मिथ्यावचन हैं सारे,
बचकर रहता हूँ मैं उनसे, पर मत कभी न तारे,
आर्य धर्म का पालन करके, दिव्यगति को पा-लो।

क्षत्रिय मुनि द्वार आत्म-परिचय एवं उपदेश

(मूल गाथाएँ- 27 से 33)

11 पूर्वजन्म का ज्ञान मुझे है, देवलोक से आया,
पुनर्जन्म और आत्मन् का, ज्ञान सही जो पाया,
नास्तिक भावों को तज करके, आस्तिक भाव जगा-लो।

12 जिनदर्शन से बढ़कर कोई, अन्य नहीं है दर्शन,
सूक्ष्म दृष्टि से तत्त्वज्ञान का, और कहीं ना वर्णन,
इस पथ के अनुगामी बनकर, जीवन सफल बना-लो।

जिन-पथ अनेक महापुरुषों से सेवित

(मूल गाथाएँ- 34 से 52)

13 मुक्ति का पद पाने हेतु, रत्नत्रयी है साधन,
चक्री ने भी पायी मुक्ति, करके इसका आराधन,
श्रेयमार्ग को अपना करके, जीवन ज्योति जगा-लो।

14 जिन शासन जयवन्त सदा ही, महापुरुषों के कारण,
धन-वैभव और राज लक्ष्मी को, छोड़ के दीक्षा धारण,
दस चक्री छः महाराजा और, प्रत्येक बुद्ध गिना-लो।

15 उस सुख पे क्या इतराना, जो अनन्त दुःखों को देगा,
उस दुःख से क्या घबराना, जो अनन्त सुखों को देगा,
राज-पाट सब छोड़ के निकले, उन वीरों को ध्यालो।

क्षत्रिय मुनि का जिनशासन अपनाने का उपदेश

(मूल गाथाएँ- 53 एवं 54)

16 कितना ऊँचा कितना सुन्दर, जिन शासन ये हमारा,
तार दिया भव जल से उसको, जिसने लिया सहारा,
तन-मन से आराधन करके, सारे कर्म खपालो।

17 जिन द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर, तुमको मुनिवर चलना,
एकान्तिक अहेतुवादों के, चक्कर में नहीं फँसना,
सत् पुरुषों के पावन पथ पर, तुम भी कदम बढ़ा-लो।

सूक्तियाँ

1. **अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि?** -18/11

   इस अनित्य जीव लोक में क्यों हिंसा में रचे-पचे हो?

2. **जया सव्वं परिच्चज्ज, गन्तव्वमवसस्स ते।**
   अणिच्चे जीवलोगम्मि किं रज्जम्मि पसज्जसि? -18/12

   जब तुझे एक दिन सब कुछ छोड़कर लाचार होकर अवश्यमेव चले जाना है, तब इस अनित्य जीवलोक में राज्य में क्यों आसक्त हो?

3. **कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छई उ परं भवं।** -18/17

   व्यक्ति अपने ही कर्म से युक्त होकर परभव में अकेला ही जाता है।

4. **संजममाणो वि अहं वसामि इरियामि य।** -18/26

   संयम का पालन करते हुए मायापूर्ण एकान्त वचनों से बचकर रहो।

5. **कहं धीरे अहेऊहिं, अत्ताणं परियावसे?** -18/54

   धीर साधक एकान्तवादी अहेतुवाद में अपने आपको कैसे लगाए?

उन्नीसवाँ अध्ययन : मृगापुत्रीय

अध्ययन-सार गीतिका

जन्म दुःखम्, मरण दुःखम्, दुःखमय संसार है,
मृगापुत्र से भाव जगे तो, दुःख से होंगे पार है।
दुष्कर नहीं है साधुचर्या, शान्त यदि इच्छा हुई,
नरक में जो दुःख भोगे, उनके सम्मुख कुछ नहीं।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

मृगापुत्र का परिचय (मूल गाथाएँ- 1 से 3)

1 रम्य एक सुग्रीव नगर था, नृप 'बलभद्र' यशस्वी,
'मृगा' नाम था पटरानी का, 'बलश्री' पुत्र तेजस्वी,
'मृगापुत्र' ही नाम था चर्चित, प्रेरक गाथा गा-लो।

2 था युवराज दमीश्वर भावी, मात-पिता का प्यारा,
रंग महल में क्रीड़ा करता, रमणी संग नजारा,
भोग भरे जीवन को तजकर, योग का रंग जमा-लो।

मृगापुत्र को मुनि दर्शन से जातिस्मरण ज्ञान

(मूल गाथाएँ- 4 से 8)

3 महल झरोखे बैठ के देखा, पथ से मुनि को जाते,
संयम गुण से समृद्ध थे वे, शील से शोभा पाते,
गुणरत्नों के सागर मुनि के, दर्शन से सुख पा-लो।

4 मुनि दर्शन से मृगापुत्र का, अनुचिन्तन गहराया,
ऐसा रूप पूर्व में देखा, याद उसे अब आया,
मनोयोग से मुनि दर्शन कर, शुभ परिणाम जगा-लो।

5 शुभ चिंतन से पूर्व जन्म की, जाग उठी अंगड़ाई,
पाला था मुनि-धर्म पूर्व में, थी उसकी पुण्याई,
संयम से अनुरक्ति जगाकर, राग-रंग को टाळौ।

विरक्त मृगापुत्र द्वारा दीक्षा की अनुमति की याचना

(मूल गाथाएँ- 9 से 11)

6 वैरागी बन करके बोला, मात-पिता से जाकर,
पंच महाव्रत सुने पूर्व में, पाले थे दे आदर,
दुःख होते तिर्यंच नरक में, उनसे जान छुड़ा-लो।

7 ग्रहण करूँगा दीक्षाव्रत को, दे दो अनुमति माते,
भोगों को मैं भोग चुका हूँ, आखिर ये तड़फाते,
काम-भोग हैं विष फल जैसे, मन से इन्हें निकालो।

मृगापुत्र का वैराग्य-मूलक कथन

(मूल गाथाएँ- 12 से 24)

8 बना अशुचि से तन अपना, दुःख-द्वन्द्वों का भाजन,
अशाश्वत आवास जीव का, रहता नहीं सनातन,
इन भावों का चिन्तन करके, शुचिता मन में रमा-लो।

9 नहीं आता आनन्द मुझे अब, ऐसे नश्वरतन में,
न जाने कब छोड़ चलेगा, शंका नहीं गमन में,
जल बुदबुद सम मिट जायेगा, तन का मोह छुड़ा-लो।

10 जन्म-जरा और रोग मरण ही, इस तन का है लेखा,
सारहीन काया में पलभर, नहीं सुख की कोई रेखा,
दुःखमय इस जग की ज्वाला से, सार तत्त्व निकालो।

11 जन्म-जरा सब दुःख रूपी है, रोग-मरण भी दुःख है,
क्लेश सभी पाते रहते हैं, जगत स्वयं ही दुःख है,
जग का सत्य स्वरूप समझकर, सुख की राह निकालो।

12 होकर विवश एक दिन मुझको, छोड़ सभी को जाना,
भोगों का फल दुःखदायी है, अन्त समय पछताना,
बन्धु-बांधव धन-वैभव से, निःस्पृह भाव जगा-लो।

13 बिन पाथेय लिए जो पंथी, दूर देश को जाता,
पीड़ित होकर भूख-प्यास से, अधबिच ही बिलखाता,
परभव का पाथेय धर्म है, ले संताप को टाळौ।

14 घर को जलता देख के स्वामी, मंहगी वस्तु बचाता,
जग में सबसे मूल्यवान है, आत्म-तत्त्व कहलाता,
दुःख से जलते इन लोकों से, खुद को आज निकालो।

माता-पिता द्वारा संयम की दुष्करताओं का प्रतिपादन

(मूल गाथाएँ- 25 से 44)

15 श्रमण-धर्म का पालन दुष्कर, सुन आँखों के तारे,
सहस्त्र गुणों का अर्जन करने, अच्छे-अच्छे हारे,
कष्ट-साध्य है साधु जीवन, खुद को आज सम्भालो।

16 बहुत कठिन है शत्रु-मित्र पर, समभावों को रखना,
जीवन भर हिंसा से विरति, मृषावाद को तजना,
हितकर सत्य बोलना भारी, मन को अभी मना-लो।

17 बिना दिये कुछ भी ना लेना, चर्या बड़ी कठिन है,
एषणीय वस्तु क्या लेना, दोष-रहित मुमकिन है?
विकट बड़ा है उग्र ब्रह्मव्रत, अपना मन समझा-लो।

18 धन- वैभव- सेवक का परिग्रह, इनसे ममता तजना,
रात्रि-भोज कभी ना करना, बड़ा कठिन है पलना,
उत्कट है सब परीषह सहना, दिल में बात बिठा-लो।

19 दारुण केशलोच का करना, पाप-कर्म से डरना,
सुखभोगी सुकुमार अभी तू, काहे दुःख में पड़ना,
पात्र नहीं साधु जीवन का, घर का धर्म निभा-लो।

20 विराम नहीं साधु जीवन में, भार गुणों का बोझिल,
निज बाहों से सागर तिरना, पुत्र! बड़ा है मुश्किल,
दुर्गम है संयमव्रत पालन, दुविधा में मत डालो।

21 संयम नीरस होता जैसे, बालू रेत को चखना,
तप भी दुष्कर होता जैसे, असिधार पर चलना,
मानो लोह के चने चबाना, दिल में बात धरा-लो।

22 सर्प की भाँति निश्चल दृष्टि, रखनी बड़ी कठिन है,
अविचल मोक्ष-साध्य की दृष्टि, होती बड़ी गहन है,
भटक न जाओ इन राहों में, मेरी बात न टाळौ।

23 यौवन में साधु जीवन का, पालन होता दुष्कर,
जैसे जलती आग को लेना, अपने मुख के अन्दर,
संयम की दुष्करता जानो, सुख में आज नहा-लो।

24 जैसे कठिन हवा से भरना, होता वस्त्र का बसना,
कठिन बड़ा संयम के पथ पर, कायर का है चलना,
सत्त्वहीन के लिए कठिन है, निर्मम भाव छुड़ा-लो।

25 निर्भय-निश्चल श्रमण धर्म का, पालन होता दुर्भर,
मानो मेरु भार तोलना, एक तराजू रखकर,
संयम-सागर पार विकट है, इसका बोध करा-लो।

26 सुनो पुत्र! अब सीख हमारी, मन में इसे विचारो,
घर में भोग भोग करके तुम, फिर संयम को धारो,
इस वय में दुष्कर है संयम, इस पर भार न डालो।

मृगापुत्र द्वारा नरक के भयंकरतम दुःखानुभव का चित्रण

(मूल गाथाएँ- 45 से 75)

27 मात-पिता जो कहा आपने, सही जगत् में लगता,
प्यास बुझी भोगों की जिसकी, निःस्पृह हो जो रहता,
कुछ भी नहीं है दुष्कर उसको, अपना मन समझा-लो।

28 विस्तृत बातें कही आपने, श्रमण-धर्म पालन में,
अनन्तगुणी झेली है पीड़ा, चहुँगति के आँगन में,
जन्म-मरण के दारुण दुःख थे, उनको याद करा-लो।

29 उष्ण-शीत नरक के वेदन, सहे अनन्ती बारी,
नरक-कुम्भी में मुझे पकाया, दारुण दुर्व्यवहारी,
तप्त हुई बालू से मुझको, अब तो मात बचा-लो।

30 नरक-कुम्भी में बांधा मुझको, ऊपर लटका करके,
दीन-हीन हो चिल्लाता था, आरे से मैं कटके,
तीव्र वेदना काँटों की थी, उनके घाव भरा-लो।

31 अशुभ कर्म-वश पेरा जाता, इक्षु-रस की भाँति,
परमाधामी पटक-पटक कर, करते थे उत्पाती,
छेदन-भेदन हुआ निरन्तर, अब तो मुझे छुड़ा-लो।

32 युगकीलक-से युक्त लोह के, जलते रथ में जोता,
हाँका था चाबुक रस्सी से, मुझको शूल चुभोता,
मुझे पकाया भैंसे के सम, परवशता से निकालो।

33 वैक्रिय रूप में पक्षी आये, बल से मुझको नोचा,
प्यास बुझाने चला वैतरणी, घबराकर जब सोचा,
जलधारा ने काटा मुझको, अब तो प्यास बुझा-लो।

34 असिपत्र वन में जब पहुँचा, होकर गर्मी से बेहाल,
बिंध गया गिरते पत्तों से, बड़ा बुरा था मेरा हाल,
मुद्गर से तन चूर्ण हुआ था, दुःख से मुझे बचा-लो।

35 तीक्ष्णधार की छुरियों से थी, चमड़ी मेरी उतारी,
मृग की भाँति कूटजाल में, बन्धन था दुःखकारी,
विवश फँसा मैं मत्स्य जाल में, अब ना फंदा डालो।

36 बाज पक्षी ने पकड़ा मुझको, लेपों से चिपकाया,
कुल्हाड़ी से पेड़ की भाँति, बार-बार कटवाया,
पीटा गया लोह की भाँति, घावों को सहला-लो।

37 लोहा-सीसा पिघला करके, मुझको खूब पिलाया,
मेरे तन का माँस मुझे ही, बार-बार खिलवाया,
जलती चर्बी रुधिर पिलाया, गर्हित कृत्य रुका-लो।

38 नरकादिक दुर्गति की मैंने, सही वेदना कितनी,
रोम-रोम कंपित हो उठता, व्यथा कहूँ क्या अपनी ?
इक पल चैन न पाया मैंने, दुर्गति को अब टाळौ।

39 इस भव से भी अनन्त वेदना, नरक गति में लगती,
कुछ भी सुख ना देखा माते! कर्म-गति ना टरती,
शेष रहे कर्मों को काटूँ, मुक्तिपथ में चालौ।

माता-पिता द्वारा अनुमति पर चिकित्सा की समस्या

(मूल गाथा- 76)

40 बेटे की बातें सुन करके, बोल पड़ी तब माता,
भले प्रव्रजित हो जाओ तुम, जिसमें तुमको साता,
होता नहीं उपचार मुनि का, इसकी सोच जगा-लो।

मृगापुत्र द्वारा मृगवत्चर्या का समर्थन

(मूल गाथाएँ- 77 से 84)

41 प्रश्न ठीक पर माते! सुनलो, समाधान क्या कहता ?
वन में पीड़ित मृग-पक्षी की, कौन चिकित्सा करता ?
विचरण करता हिरन अकेला, एकल भाव जगा-लो।

42 जब होता मृग रोगी वन में, कौन औषधि देता ?
खाना-पीना कौन है देता, कौन सुधि है लेता ?
रोगमुक्त हो चरने जाता, मृगचर्या अपना-लो।

43 अपना करके मृगचर्या मुनि, पदचारी वन विचरे,
भिक्षा लेवे कई घरों से, निन्दा स्वर ना उभरे,
नियताचारी नहीं हो भिक्षु, मुक्ति मार्ग सम्भालो।

माता-पिता द्वारा दीक्षा की अनुमति

(मूल गाथाएँ- 85 एवं 86)

44 मृगचर्या से विचरूँगा माँ! तजता हूँ उपधि को,
जिसमें सुख हो करो पुत्र अब, पाओ संबोधि को,
मात-पिता की अनुमति पाकर, भिक्षु-धर्म निभा-लो।

मृगापुत्र-श्रमण निर्ग्रन्थ रूप में (मूल गाथाएँ- 87 से 96)

45 नानाविध से मात-पिता को, बेटे ने समझाया,
तोड़ चला ममता का बन्धन, पा आज्ञा हर्षाया,
जैसे नाग केंचुली छोड़े, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

46 रज को झाड़े वस्त्र से जैसे, छोड़ दिया परिजन को,
निकल पड़ा संयम के पथ पर, तोड़ सभी अड़चन को,
हुआ प्रव्रजित मृगापुत्र फिर, संयम स्वाद चखा-लो।

47 पंच महाव्रत-समिति-गुप्ति, तप से था अभिसंगी,
अहंकार ममकार रहित हो, बन गया वो निःसंगी,
समभावी था सब जीवों पर, समता रंग रंगा-लो।

48 लाभ-अलाभ अरु सुख-दुःख में, जीवन और मरण में,
मान और अपमान सभी में, सम था अन्तः करण में,
निन्दा और प्रशंसा में सम, ऐसे भाव जगा-लो।

49 गौरव- कषाय- दण्ड- शल्य- भय, हास्य शोक से निवृत्त,
कांक्षा नहीं प्रतिष्ठा यश की, बन्ध निदान से वंचित,
लौकिक सुख की नहीं कामना, कर्म काट अब डालो।

50 निरोध किया आश्रव द्वारों का, लीन हुआ आतम में,
रत्नत्रयी से भावित था वो, श्रमण-धर्म पालन में,
अनशन करके एक मास का, सिद्धि का पद पा-लो।

मृगापुत्र निर्ग्रन्थ के चारित्र से प्रेरणा (मूल गाथाएँ 97 से 99)

51 जैसे निवृत्त हुए भोग से, मृगापुत्र से ऋषिवर,
वैसे ही निवृत्त होते हैं, ज्ञानी और मुनीश्वर,
चरित श्रवण कर मृगापुत्र का, धर्म-धुरा अपना-लो।

सूक्तियाँ

1. **जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य।**
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतवो।। -19/16

जन्म दुःख रूप है, जरा (बुढ़ापा) दुःख रूप है, रोग और मरण भी दुःख रूप है। अहो! निश्चय ही यह संसार दुःखमय है, जिसमें प्राणी कलेश पाते हैं।

2. **जहा किंपागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो।**
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो।। -19/18

जैसे खाये हुए किंपाकफलों का अन्तिम परिणाम सुन्दर नहीं होता, वैसे ही भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता।

3. **अद्धाणं जो महन्तं तु, अपाहेओ पवज्जई।**
गच्छन्तो सो दुही होई, छुहा तण्हाए पीडिओ।। -19/19

जो व्यक्ति पाथेय लिए बिना ही लम्बे मार्ग पर चल देता है, वह चलता हुआ रास्ते में भूख और प्यास से पीड़ित होकर दुःखी होता है।

4. **जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू,**
सारभण्डाणि नीणेइ, असारं अवउज्झइ।।
एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य।
अप्पाणं तारइस्सामि तुब्भेहिं अणुमन्निओ।। -19/23, 24

जिस प्रकार घर में आग लग जाने पर उस घर का स्वामी सारभूत वस्तुएँ बाहर निकाल लाता है और असार को वहीं छोड़ देता है, उसी प्रकार जरा और मरण से जलते हुए इस लोक में सारभूत आत्मा को बाहर निकाल लो।

5. **इह लोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचि वि दुक्करं।** -19/45

इस लोक में जो तृष्णारहित है, निःस्पृह है, उसके लिए संयम-साधना किंचित् भी दुष्कर नहीं है।

6. **लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।**
समो निन्दा-पसंसासु, तहा माणावमाणओ। -19/91

लाभ-अलाभ में, सुख और दुःख में, जीवन और मरण में, निन्दा और प्रशंसा में एवं मान-अपमान में समत्वनिष्ठ बनो।

7. **ममत्तबंधं च महब्भयावहं।** -19/99

ममत्व बन्धन को अत्यन्त भयावह जानो।

बीसवाँ अध्ययन : महानिर्ग्रन्थीय

अध्ययन-सार गीतिका

पालता जो श्रमणचर्या, इन्द्रियों को जीतता,
अभयदाता बनके सबका, जीव रक्षा पालता।
आत्म-शासन से श्रमण है, नाथ होता स्वयं का,
त्राण दे सब प्राणियों को, नाथ होता जगत का।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

धर्म और मोक्ष का बोध कराने वाली कथा कहने की प्रतिज्ञा (मूल गाथा- 1)

1 सिद्धों और संयत को मेरा, भाव भरा है वंदन,
धर्म-अर्थ का ज्ञान कराऊँ, तथ्यपूर्ण संबोधन,
हितकामी करते अभिलाषा, ज्ञान से सत्य जगा-लो।

उद्यान में श्रेणिक राजा की तरुण मुनि को देखकर जिज्ञासा (मूल गाथाएँ- 2 से 8)

2 करने को आमोद मगधपति, पहुँच गया उपवन में,
आँख टिकी ध्यानस्थ मुनि पर, सौम्य लगे यौवन में,
सुन्दर संयत रूप देखकर, मन में उसे बसा-लो।

3 कैसा सुंदर रूप-रंग है! कैसी है कोमलता!
कैसी इनकी अनासक्ति है! क्षमा और निर्मलता!
दर्शन से अभिभूत था राजन्, दर्शन कर सुख पा-लो।

4 वंदन कर राजा ने पूछा, अभी तरुण हो मुनिवर,
भोग काल में हुए प्रव्रजित, क्या कारण है प्रियवर ?
उत्कट जिज्ञासा है मन में, इसका राज निकालो।

मुनि और राजा का अनाथ-सनाथ सम्बंधी संवाद

(मूल गाथाएँ- 9 से 16)

5 धीर-वीर संयत तब बोले, मैं अनाथ था राजन्,
करुणाशील मिला नहीं कोई, बंधु बांधव परिजन,
इसीलिए संयम को धारा, योगक्षेम अपना-लो।

6 मुक्तहास से राजा बोला, ऋद्धिमान तुम लगते,
फिर भी अनाथ कहा क्यों भंते! मन में प्रश्न उभरते,
मैं बनता अब नाथ तुम्हारा, मेरे संग में चालौ।

7 परिजन के संग में रह करके, सुखभोगी बन महको,
मुश्किल है मानव तन मिलना, दुःख देते क्यों इसको ?
सुख को तजना योग्य नहीं है, भिक्षा की वृत्ति टाळौ।

8 भोग निमन्त्रण पाकर मुनिवर, बोले ऐसे गहरे,
तुम खुद राजन् हो अनाथ, क्या नाथ बनोगे मेरे ?
खरे वचन को कहना-सुनना, निर्णय सही करा-लो।

9 अश्रुत वचन मुनि के सुनकर, मगधपति चकराया,
मैं सम्राट हूँ मगध देश का, अपना वैभव पाया,
मेरी सत्ता सब पर चलती, मुनिवर संशय टाळौ।

10 होता कौन अनाथ यहाँ पर, कौन सनाथ कहाता?
ज्ञात नहीं है तुमको राजन्, सुनो मैं आज बताता,
नाथ-अनाथ की परिभाषा को, सुनकर भ्रान्ति मिटा-लो।

अनाथ शब्द का रहस्योद्घाटन (मूल गाथाएँ- 17 से 30)

11 एकचित्त हो सुनना राजन्! घटना नहीं पुरानी,
हुआ अनाथ मैं कैसे सुनलो, अनुभव भरी कहानी,
धन-वैभव-सत्ता का राजन्! अहं कभी ना पालौ।

12 नगरों में सुन्दर नगरी थी, कौशाम्बी इक न्यारी,
पिता वहीं रहते थे मेरे, विपुल सम्पदाधारी,
साधन-सुविधा धन-वैभव था, पूर्व परिचय पा-लो।

13 यौवनवय में इक दिन मेरे, नेत्र वेदना उभरी,
शस्त्र प्रहार सम पीड़ा थी वो, अंग-अंग में गहरी,
मैं बेचैन था अति पीड़ा से, कोई पीड़ा टाळौ।

14 पिता ने मेरी पीड़ा हरने, कुशल वैद्य बुलवाए,
माता-भाई-बहनें-पत्नी, सब ने करीं दुआएँ,
टाळ सका ना कोई पीड़ा, कर्म कहानी सुना-लो।

15 मिली शरण ना मुझे किसी की, हुआ न कोई रक्षक,
धन-परिजन काम न आये, रोग बना विस्फोटक,
यही अनाथपना था मेरा, राजन् भरम मिटा-लो।

अनाथ से सनाथ बनने की कथा (मूल गाथाएँ- 31 से 35)

16 मन ही मन संकल्प किया तब, लगती पीड़ा भारी,
मुक्त अगर हो जाऊँ इससे, बन जाऊँ अणगारी,
यही सोचकर मैं सोया था, श्रद्धा भाव बसा-लो।

17 रात्रि बीती चैन से मेरी, गई वेदना सारी,
परिजन से अनुमति पाकर के, मैंने दीक्षा धारी,
तब से नाथ बना मैं अपना, दया धर्म को पालौ।

18 दुःख का कारण सुनो हे राजन्! कर्मों का ये फल है,
संवर और निर्जरा से ही, दुःख होते निष्फल हैं,
परम औषधि श्रद्धा का बल, पी-लो और पिला-लो।

19 जो जग के भोगों को त्यागे, संयम वृत्ति धारे,
वही नाथ होता है अपना, राग-द्वेष जो टारे,
सब जीवों का रक्षण करके, सबके नाथ कहा-लो।

आत्मा ही अनाथ-सनाथ होती है

(मूल गाथाएँ- 36 एवं 37)

20 वैतरणी सम दुःखद आत्मा, कूटशाल्मली आत्मा,
कामधेनु सम सुखद आत्मा, नन्दनवन है आत्मा,
नाथ-अनाथ स्वयं ही आतम, आतमरूप सम्भालो।

21 सुख-दुःख दाता अन्य नहीं है, स्वयं आत्मा अपनी,
आत्मा अपना शत्रु-मित्र है, करनी जैसी भरनी,
नहीं किसी को दोषी कहना, दोष से खुद को बचा-लो।

अन्य प्रकार की अनाथता (मूल गाथाएँ- 38 से 50)

22 अन्य अनाथ भी होते राजन्! सुनो जिक्र अब उनका,
कायर बनकर संयम पालै, खेद-खिन्न मन जिनका,
साधु होकर दोष लगाते, उन्हें अनाथ कहा-लो।

23 महाव्रत का नहीं सम्यक् पालन, और प्रमाद जो करते,
नहीं अनुशासन, रस-आसक्ति, राग-द्वेष नहीं तजते,
ऐसा श्रमण अनाथ कहाता, करुण दशा को टाळौ।

24 पंचसमिति में नहीं यतना, वीर मार्ग नहीं चलता,
केवल द्रव्य से मुंडित रहता, अनुशासन से बचता,
अनाथपना इससे बढ़कर क्या? समझो दोष निकालो।

25 खाली मुट्ठी, खोटा सिक्का, मूल्य न काँचमणि का,
द्रव्य लिंग से पूजा पाता, मूल्य न ऐसे मुनि का,
जन्म-मरण दुःख छूट सके ना, ये अनाथता टाळौ।

26 कालकूट विष उलटा आयुध, खुद का घात कराता,
वश में नही वैताल अगर तो, स्वामी को मरवाता,
विषय-युक्त है धर्म भी ऐसा, आत्मघात को टाळौ।

27 तन्त्र-मन्त्र लक्षण विद्या से, जीवन-यापन करता,
ऐसा साधक मिथ्या भ्रम से, दुर्गति का दुःख भरता,
शरण मिले नहीं उसको कोई, कर्म का कर्ज चुका-लो।

28 नित्य सदोषी भोजन करता, पाप से दुर्गति पाता,
गला काटने वाले से भी, ज्यादा अहित कराता,
अंत समय में खेद है करता, पश्चाताप को टाळौ।

29 विपरीत बुद्धि रखे मोक्ष में, उभय लोक नहीं सधता,
भोगासक्त स्वछन्दी साधु, दुःख द्वन्द्वों में फँसता,
भ्रष्ट भिक्षु संताप को पाते, जिनपथ को अपना-लो।

महानिर्ग्रन्थीय (सनाथता) पथ पर चलने की प्रेरणा और उसका महाफल (मूल गाथाएँ- 51 से 53)

30 मेधावी सुनकर हित शिक्षा, तजे कुशील के पथ को,
तीर्थंकर के पथ पर चलके, पहुँचे मोक्ष तीरथ को,
ज्ञान-चरित से समृद्ध होकर, बंध का हेतु छुड़ा-लो।

31 शीलहीन का मारग छोड़े, जिन पथ को अपनाए,
श्रेणिक राजन्! सुनो ध्यान से, वो सनाथ कहलाए,
ऐसा मार्ग मोक्ष का कारण, शाश्वत सुख को पा-लो।

श्रेणिक द्वारा मुनि का महिमागान
(मूल गाथाएँ- 54 से 59)

32 मुनि उपदेश से हर्षित राजा, हाथ जोड़ कर बोला,
प्रभु आपने अनाथता का, तत्त्व यथारथ खोला,
जन्म सफल ऐसे मुनिजन का, स्व-पर नाथ कहा-लो।

33 जिज्ञासावश मैंने आपके, ध्यान में डाली बाधा,
भूल से भोग का दिया निमन्त्रण, मैं अपराध खमाता,
श्रेणिक ने समकित गुण पाया, धर्म से प्रीत जगा-लो।

34 हर्ष भाव से श्रेणिक राजा, वंदन कर घर आया,
सच्चे साधक मुनि अनाथी, जिनका यश जग छाया,
धन्य अनाथी, धन्य है राजा, जिनसे सत्य जगा-लो।

महानिर्ग्रन्थ अनाथी मुनि का अप्रतिबद्ध विहार

(मूल गाथा- 60)

35 त्रिगुप्ति के धारक मुनिवर, गुण के रत्नाकर हैं,
रहते विरत तीन दण्ड से, जिनवर के अनुचर हैं,
परिग्रह रहित विहग की भाँति, इस भूतल पर चालौ।

सूक्तियाँ

1. **अप्पणा वि अणाहो सि, अप्पणा अणाहो संतो,**
कहं नाहो भविस्ससि ? -20/12
तुम स्वयं अनाथ हो। जब तुम स्वयं अनाथ हो तो किसी दूसरे के नाथ कैसे हो सकोगे ?

2. **न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया।** -20/30
(सब कुछ करने पर भी) वे सब मुझे दुःख से विमुक्त नहीं कर सके, यही मेरी अनाथता थी।

3. **ततो हं नाहो जाओ अप्पणो य परस्स य।**
सव्वेसिं चेय भूयाणं तसाण थावराण य।। -20/35
(प्रव्रज्या अंगीकार करने के बाद) मैं अपना और दूसरों का, त्रस और स्थावर सभी प्राणियों का नाथ हो गया।

4. **अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।**
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं।। -20/36
अपनी आत्मा स्वयं ही वैतरणी नदी और कूटशाल्मली वृक्ष जैसी दुःखदायी है और अपनी आत्मा ही कामदुधा धेनु तथा वही नन्दनवन के समान सुखदायी है।

5. **अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।**
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय-सुप्पट्ठिओ।। -20/37
आत्मा ही अपने सुखों और दुःखों का कर्त्ता है और वही इनका भोक्ता है। सत्प्रवृत्ति में रत आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में रत आत्मा ही अपना शत्रु है।

6. **विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।**
एसे व धम्मो विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो।। -20/44
जैसे पिया हुआ कालकूट विष तथा उलटा पकड़ा हुआ शस्त्र अपना ही घात कर देता है तथा वश में नहीं किया गया वैताल (पिशाच) विनाश कर देता है, वैसे ही विषय-विकारों से युक्त धर्म भी विनाश कर देता है।

7. **न तं अरी कंठछेत्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।** -20/48
कुमार्ग में दुष्प्रवृत्त अपनी आत्मा जिस प्रकार का अनर्थ करता है, वैसा अनर्थ तो गला काटने वाला शत्रु भी नहीं कर पाता।

8. **निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स, जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ।** -20/49
जो मोक्ष या संयम में विपरीत दृष्टि रखता है, उसकी साधुत्व में रुचि व्यर्थ है।

इक्कीसवाँ अध्ययन : समुद्रपालीय

अध्ययन-सार गीतिका

कर्मफल को देख करके, अशुभ कर्मों का यहाँ,
मुक्ति की अभिलाष जागे, ज्ञानी-जन ने है कहा।
अनगार बन संबुद्ध होकर, पंचव्रत जो पालते,
समुद्रपाल-से सूर्यसम वे, संघ में हैं शोभते।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

पालित श्रावक और उसका व्यवसायार्थ विदेश गमन (मूल गाथाएँ- 1 एवं 2)

1 चम्पानगरी में रहता था, 'पालित' एक व्यवसायी,
जिनप्रवचन का ज्ञाता भारी, प्रभु का था अनुयायी,
पालन कर आगार धर्म को, श्रावक श्रेष्ठ कहा-लो।

2 करने को व्यापार एक दिन, दूर देश में पहुँचा,
न्यायपूर्ण व्यवहार के कारण, नगरी में थी चर्चा,
नैतिकता की महिमा न्यारी, बनकर नाम कमा-लो।

पालित का विवाह एवं पुत्र जन्म (मूल गाथाएँ- 3 एवं 4)

3 पिहुण्ड नगर में एक वणिक ने, योग्य समझ पालित को,
हर्षित होकर निज पुत्री को, सौंपी अभिलक्षित को,
चरित्र गुण है सबका प्यारा, सद्गुण को विकसा-लो।

4 लौटा अपने देश को पालित, पत्नी संग सुहानी,
बीच सिन्धु में जन्म दिया था, पुत्र एक वरदानी,
'समुद्रपाल' था नाम धराया, उसकी महिमा गा-लो।

समुद्रपाल का चम्पा में शिक्षण और विवाह
(मूल गाथाएँ- 5 से 7)

5 क्षेम-कुशल सब चम्पा आये, घर में बजी शहनाई,
यौवन खिलने लगा पुत्र का, कला-विद्वता पाई,
अद्भुत उसका नीति कौशल, मन में खुशी बसा-लो।

6 परिणय किया समुद्रपाल का, अति सुन्दर एक नारी,
देवतुल्य सुख भोगे उसने, निर्भय बन रसधारी,
काम-भोग में सार नहीं है, इसका बोध करा-लो।

समुद्रपाल की विरक्ति एवं दीक्षा (मूल गाथाएँ 8 से 10)

7 महल से देखा एक वध्य को, वध स्थल ले जाते,
अपराधी की दशा देखकर, चिन्तन कण चेताते,
अशुभ कर्म का अशुभ अन्त है, कर्म का कर्ज चुका-लो।

8 समुद्रपाल की प्रज्ञा जागी, कर्मों का यह फल है,
जैसी करनी वैसी भरनी, नियम सदा अटल है,
दुष्कर्मों को छोड़के जल्दी, जीवन को महका-लो।

9 मुक्ति की अभिलाषा उद्बुद्ध, विरति भाव गहराया,
प्रबुद्ध हुआ बन्धन को तजने, आत्म-धर्म ही भाया,
अनुमति पाकर मात-पिता की, मुनि का धर्म निभा-लो।

आदर्श मुनि का आचरण (मूल गाथाएँ- 11 से 22)

10 क्लेशकारी भयप्रद आसक्ति, बाह्य और आभ्यन्तर,
सर्व संग को तजदे मुनिजन, परीषह सारे सहकर,
व्रत-पालन और शील धर्म में, अपनी रुचि जगा-लो।

11 धारण करले पंचमहाव्रत, वीतराग पथ चलकर,
क्षमा-दया-संयम का पालन, पापकर्म को तजकर,
निर्भय होकर विचरण करके, अशुभ वचन को टाळौ।

12 करे उपेक्षा प्रतिकूलों की, पूजा और निन्दा की,
उपसर्गों को सहे शान्ति से, चर्या नहीं प्रमदा की,
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, ऋजुता मन में बसा-लो।

13 नहीं घबराये बाधाओं से, खिन्न कभी ना रहते,
भाव अकिंचन रहे सदा ही, परम पदों से सजते,
षट्कायी जीवों के रक्षक, परिजन संग भूला-लो।

उत्कृष्ट आराधना से समुद्रपाल मुनि सिद्ध-बुद्ध-मुक्त
(मूल गाथाएँ- 23 एवं 24)

14 तत्त्वज्ञ बने श्रुतज्ञान सीख कर, चर्या रहे अनुत्तर,
ऐसे मुनिवर धर्मसंघ में, आलोकित ज्यों दिनकर,
समुद्रपाल मुनि शोभित इनसे, उनको शीश नमा-लो।

15 निश्चल थे संयम में मुनिवर, निज के बने अधीश्वर,
सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हुए, सब कर्मों का क्षय कर,
भवसागर को तिर करके अब, आवागमन मिटा-लो।

सूक्तियाँ

1. **अहोऽसुभाण कम्माणं, निज्जाणं पावगं इमं।** -21/9
अहो! अशुभ कर्मों का यह पापरूप (अशुभ) अन्तिम परिणाम ही है।

2. **परीसहा दुव्विसहा अणेगे, सीयंति जत्था बहुकायरा नरा।**
से तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू, संगामसीसे इव नागराया।। -21/17
सुख की तरह समय-समय पर अनेक प्रकार के दुःसह परीषह और संकट भी आते रहते हैं, जिनसे कायर व्यक्ति खिन्न हो जाते हैं, परन्तु संयमी साधु उन संकटों और परीषहों में भी संग्राम में आगे रहने वाले गजराज की तरह व्यथित नहीं होते हुए विचरता रहे।

3. **अणुन्नए नावणए महेसी, न यावि पूयं गरहं च संजए।** -21/20
पूजा-प्रतिष्ठा में गर्व और गर्हा में अधोमुख न हों और स्वयं को संयत रखे।

4. **अरइरइसहे पहीणसंथवे, विरए आयहिए पहाणवं।**
परमट्ठपएहिं चिट्ठई, छिन्नसोए अममे अकिंचणे।। -21/21
जो अरति और रति को सहन करता है, संसारी जनों के संसर्ग से दूर रहता है, विरत है, आत्महित का साधक है, संयमवान है, शोक रहित है, ममत्वरहित है, अकिंचन है, वह परमार्थ पदों (सम्यग्दर्शन आदि साधनों) में स्थित होता है।

बाईसवाँ अध्ययन : रथनेमीय

अध्ययन-सार गीतिका

प्राणियों का वध अगर हो, मेरे कारण से यहाँ,
श्रेयकारी हो कभी ना, अरिष्टनेमि ने कहा।
राजीमती के बोध से, संयम टिका रथनेमि का,
श्रेष्ठकुल की साध्वी वो, शील की थी रक्षिका।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

तीर्थंकर अरिष्टनेमि का परिचय (मूल गाथाएँ- 1 से 5)

1 सौरीपुर में समुद्रविजय थे, राजा वैभवशाली,
महायशस्वी अरिष्टनेमि सुत, लक्षण गौरवशाली,
महादमीश्वर लोकनाथ के, दर्शन से सुख पा-लो।

राजीमती के साथ विवाह करने अरिष्टनेमि का जाना
(मूल गाथाएँ- 6 से 13)

2 अरिष्टनेमि सज्जित होकर के, पहुँचे जब परिणय को,
करने वरण राजीमती का, सुन्दर ज्योतिर्मय को,
वरयात्रा के ठाठ निराले, शोभा मन में बसा-लो।

बाड़े में बद्ध पशु-पक्षियों को देख अरिष्टनेमि करुणा से विगलित (मूल गाथाएँ- 14 से 20)

3 इक बाड़े में बंदी देखे, पशु-पक्षी उत्पीड़ित,
चीख रहे थे डर के मारे, शरणहीन थे शंकित,
क्यों चिल्लाते हैं ये सारे, इसका राज निकालो।

4 सरल प्रकृति के जीवों को, भोजन हित काटेंगे,
माँसभक्षी बारातीजन फिर, वो भोजन पायेंगे,
पशु-पक्षी के दारुण दुःख को, अन्तर्मन को सुना-लो।

5 व्यथित हुए सुन करके नेमि, आँखों में आँसू आये,
निमित्त बनेगा मेरा परिणय, मैंने सब मरवाये,
श्रेयस्कारी काम नहीं है, इनको अभी छुड़ा-लो।

6 मुक्त हुए हर्षित पशु-पक्षी, इधर-उधर को दौड़े,
करुणा से विगलित हो नेमि, रथ को पीछे मोड़े,
बन्धन मुक्त हुए वे प्राणी, खुद का बन्ध छुड़ा-लो।

अरिष्टनेमि का चिन्तन एवं प्रव्रज्या ग्रहण (मूल गाथाएँ- 21 से 27)

7 अरिष्टनेमि ने त्यागी अपनी, परिणय की अब इच्छा,
भावी अनिष्ट देखकर सोचा, दीक्षित होना अच्छा,
स्वर्ग से देव उतर कर आये, उत्सव आज मना-लो।

8 लोच किया फिर अरिष्टनेमि ने, पंचमुष्टि से खुद ही,
कर लिए धारण महाव्रतों को, पाने को निज पद ही,
इष्ट मनोरथ पूरा करने, रत्नत्रयी अपना-लो।

राजीमती का प्रव्रजित होना (मूल गाथाएँ- 28 से 32)

9 अरिष्टनेमि जब लौट पड़े तो, राजीमती घबराई,
मूर्च्छित होकर गिरी धरा पे, सखियों ने सहलाई,
त्याग दिया जब नेमि ने ही, अब उनके पथ चालौ।

10 राजीमती जब शांत हुई तो, चिन्तन का स्वर गूँजा,
मैंने नहीं तजा नेमि को, पंथ नहीं अब दूजा,
दीक्षा लेकर व्यथा छोड़ दी, प्रभु से प्रेम जुड़ा-लो।

रेवतगिरि गुफा में राजीमती को देखकर रथनेमि की भोगयाचना

(मूल गाथाएँ- 33 से 38)

11 पर्वत पर वर्षा से भीगी, बीच राह में जाते,
गई गुफा में राजीमती जी, अन्धकार के आते,
वस्त्र सुखाने लगी साध्वी, निर्जनता को टाळौ।

12 नग्नरूप में राजीमती को, ध्यानी मुनि ने देखा,
पता चला जब राजीमती को, मन में भय की रेखा,
समुद्र विजय के अंगजात के, मन को अभी सम्भालो।

13 रथनेमि का मन ललचाया, राजीमती से बोला,
डरो नहीं हे रमणी मुझसे, अपना परिचय खोला,
नारी का संसर्ग निषिद्ध है, चंचलता को टाळौ।

रथनेमि को राजीमती द्वारा उद्‌बोधन

(मूल गाथाएँ- 39 से 47)

14 वस्त्रों से तन ढक कर बोली, नहीं चाहती तुझको,
तू चाहे साक्षात् इन्द्र हो, मतलब नहीं है मुझको,
शील की रक्षा श्रेष्ठ धर्म है, शीलव्रतों को पालौ।

15 अगन्धन कुल के सर्प कभी भी, वमन किया नहीं खाते,
अग्नि में जल जाते हैं पर, कुल नहीं दाग लगाते,
भोग त्याग कर फिर ललचाना, शर्म से आँख गड़ा-लो।

16 उच्चकुलों से आकर के भी, वमन किया तू पीता,
रथनेमि धिक्कार तुझे है, क्यों जग में तू जीता ?
शोभा नहीं देता है तुझको, कुल की लाज बचा-लो।

17 समुद्रविजय के हे सुत! सुनलो, उग्रसेन की पुत्री,
उच्च कुलों से हैं हम दोनों, उजली हो यह रात्रि,
स्वस्थचित्त होकर के अब तू, संयम धन लौटा-लो।

18 सुन्दर रूप देख नारी का, उसमें यदि ललचाना,
होगा नहीं पात्र मोक्ष का, बने दुःखद अफसाना,
भटके मन को अब समझा के, अपना धर्म बचा-लो।

रथनेमि का पुनः संयम में स्थिर होना

(मूल गाथाएँ- 48 एवं 49)

19 शीलवती के वचनों को सुन, रथनेमि फिर सम्भला,
आत्म-धर्म में थिर होकर के, संयम के पथ निकला,
राजीमती के उद्‌बोधन से, अपना पाप धुला-लो।

चारित्र का पालन कर दोनों का मुक्त होना

(मूल गाथाएँ- 50 एवं 51)

20 तपश्चरण करके दोनों ने, मुक्ति का पद पाया,
कर्म काट कर अपना नाता, सिद्धि संग रचाया,
संबोधि को पाना हो तो, विरति भाव जगा-लो।

सूक्तियाँ

1. **जइ मज्झ कारणा एए, हम्मिहिंति बहू जिया।**
   न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सई।। -22/19
   यदि अपने निमित्त से इन प्राणियों का वध होता है तो यह जीव हिंसा का दुष्कृत्य परलोक में अपने लिए श्रेयस्कर नहीं होगा।

2. **नाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेण तहेव य।**
   खंतीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य।। -22/26
   तुम ज्ञान दर्शन, चारित्र तप तथा क्षमा और निर्लोभता की साधना के द्वारा आगे बढ़ो।

3. **पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं।**
   नेच्छन्ति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे।। -22/42
   अगन्धन कुल में उत्पन्न हुए सर्प, धूम की ध्वजा वाली एवं अत्यन्त कठिनता से प्रवेश हो सके ऐसी प्रज्वलित अग्नि में कूदना पसन्द करते हैं, किन्तु वमन किये हुए अपने विष को पुनः नहीं पीना चाहते।

4. **गोवालो भण्डवालो वा, जहा तद्दव्वऽणिस्सरो।**
   एवं अणिस्सरो तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि।। -22/46
   जैसे गायें चराने वाला उन गायों का स्वामी नहीं होता, इसी प्रकार संयम रहित केवल वेषधारी श्रामण्य भाव वाले मोक्ष मार्ग के अधिकारी नहीं होते।

तेईसवाँ अध्ययन : केशि-गौतमीय

अध्ययन-सार गीतिका

गौतम से केशि ने कहा, आचार में क्यों भिन्नता ?
लक्ष्य दोनों का वही तो, दिख रही क्यों विषमता ?
काल के व्यवहार से ही, चर्या में है विविधता,
निश्चय से सब ही एक हैं, उनमें न कोई अन्यता।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

तीर्थंकर पार्श्व और उनकी परम्परा के शिष्य केशी

(मूल गाथाएँ- 1 से 4)

1 लोक पूजित पार्श्व जिन थे, धर्मतीर्थ प्रवर्त्तक,
परम्परा में शिष्य केशी थे, महाकीर्ति के धारक,
पारगामी थे ज्ञान-चरित में, पार्श्व शिष्य गुण गा-लो।

2 अवधि और श्रुतज्ञान से केशी, तत्त्वों के थे ज्ञाता,
श्रावस्ती नगरी में पहुँचे, शिष्य संघ सरसाता,
ठहर गये तिन्दुक उपवन में, धर्म की ज्योति जगा-लो।

वर्धमान तीर्थंकर व उनके शिष्य गणधर गौतम

(मूल गाथाएँ- 5 से 8)

3 उसी समय प्रभु वर्धमान थे, जग विश्रुत तीर्थंकर,
महायशस्वी शिष्य थे गौतम, अंग-ज्ञान के दिनकर,
निर्मल ज्ञान चरित के धारी, गौतम शीश नमा-लो।

4 गौतम शिष्यों से परिवृत हो, पहुँचे नगरी श्रावस्ती,
ठहरे वे निर्दोष जगह में, कोष्ठिक उपवन वसति,
केशी-गौतम परिचर्या से, अपना ज्ञान बढ़ा-लो।

दोनो तीर्थों के अन्तर पर शिष्य मंडली में चिन्तन

(मूल गाथाएँ- 9 से 13)

5 दोनों का ही शिष्य संघ था, बड़ा तपो गुणशाली,
षट्कायिक जीवों का रक्षक, संयत प्रतिभाशाली,
शिष्यों के मन चिन्तन जागा, उसका बोध करा-लो।

6 कैसा है ये धर्म पार्श्व का, महावीर का है कैसा ?
भिन्न रही आचार व्यवस्था, क्यों होता है ऐसा ?
शिष्यों के मन उपजा चिन्तन, जिज्ञासा प्रतिपालौ।

7 पार्श्व प्रभु का उपदेशित है, चातुर्याम यह धर्म,
वर्धमान प्रतिपादित लेकिन, पंचमहाव्रत धर्म,
इन दोनों में संगति कैसी, इसका ज्ञान करा-लो।

8 अचेलक है आचार क्रिया, वर्धमान जिनवर की,
वर्ण-वेष सचेल व्यवस्था, पार्श्वनाथ जिनवर की,
साध्य एक जब दोनों का तो, इसका मर्म निकालो।

संशय निवारणार्थ केशी-गौतम का मिलन

(मूल गाथाएँ- 14 से 20)

9 शिष्यों की शंकाओं को जब, दोनों ने ही जाना,
शंका समाधान के हेतु, उनने मिलना ठाना,
शिष्यों के संघ गौतम पहुँचे, तिन्दुक वन उजियालो।

10 बड़े प्रेम से आदर देकर, केशी ने की अगवानी,
तिन्दुक वन में गौतम-केशी, सूर्य-चन्द्र सुखदानी,
तेजस्वी शीतलता पाने, अपने मन को जगा-लो।

केशी-गौतम संवाद

केशी की जिज्ञासा (मूल गाथाएँ- 21 एवं 22)

11 महाभाग! हे गौतम तुमसे, चाहता हूँ पृच्छा करना,
जैसी इच्छा पूछो भन्ते!, गौतम का तब कहना,
केशी ने जो प्रश्न किये थे, उनके उत्तर पा-लो।

धर्म व्यवस्था में भेद क्यों ? (मूल गाथाएँ- 23 से 27)

12 पार्श्व प्रभु का प्रतिपादित है, चार महाव्रत धर्म,
लेकिन वर्धमान के भन्ते! पाँच महाव्रत धर्म,
मोक्ष साध्य है जब दोनों का, इसका संशय टाळौ।

13 गौतम ने अविलम्ब दिया तब, सूत्र एक विचक्षण,
प्रज्ञा से ही होता भन्ते! धर्म-तत्त्व समीक्षण,
सम्यक् अर्थ विनिश्चय हेतु, अन्तर्बोध जगा-लो।

14 पहले तीर्थंकर के साधु, ऋजु और जड़ होते,
अंतिम तीर्थंकर के साधु, वक्र और जड़ होते,
ऋजु-प्राज्ञ होते मध्यम के, इसकी समझ करा-लो।

15 मनोवृत्ति को देख साधु की, भेद किया है व्रत में,
इसीलिए दो साधु कल्प हैं, तीर्थंकर अभिमत में,
विसंगति नहीं पूर्णज्ञान में, अपना मन समझा-लो।

16 बोध यथावत् मुनि के व्रत का, कठिन प्रथम में होता,
निर्मल उसका पालन दुष्कर, अंतिम तीर्थ में होता,
मध्य तीर्थ में दोनों सम्यक्, इसका ज्ञान करा-लो।

17 प्रज्ञा श्रेष्ठ तुम्हारी गौतम! दूर हुआ यह संशय,
और भी है कुछ संशय मेरे, सुनलो उनका परिचय,
महाप्राज्ञ! इनका भी अब तुम, समाधान कर डालो।

लिंग वेश की द्विविधता क्यों ? (मूल गाथाएँ- 28 से 33)

18 महावीर का धर्म अचेलक, पारस का सान्तर-उत्तर,
मोक्ष साध्य है दोनों का ही, क्यों होता इनमें अन्तर?
वेष भिन्नता का क्या कारण? मेरा भरम निकालो।

19 सर्वज्ञों ने अपने ज्ञान से, काल भाव जब देखा,
धर्म का साधन मान्य किया, भिन्न वस्त्र का लेखा,
पात्रों के अनुरूप वस्त्र हैं, ना कोई खोट निकालो।

20 साधुरूप की प्रतीति हेतु, अलग वेष है माने,
भान रहे साधुत्व का हरदम, संयम धर्म निभाने,
यही प्रयोजन है वस्त्रों का, संशय सभी मिटा-लो।

21 सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित ही, मुक्ति के साधन हैं,
निश्चय से सर्वज्ञों का ये, अनुभूति बोधन है,
मुख्य साधना वेष नहीं है, मन में इसे रमा-लो।

कषाय इन्द्रियाँ और आत्मा पर विजय कैसे ?
(मूल गाथाएँ- 34 से 38)

22 एक अकेले हो तुम गौतम! शत्रुदल है भारी,
उनको कैसे जीता तुमने? बात कहो अब सारी,
कषायजनित वृत्तियाँ ही शत्रु, उनको अभी हरा-लो।

23 पाँच इन्द्रियाँ चार कषाय और, मन को जीता मैंने,
जीत लिये जब दशविध शत्रु, जीत लिये सब मैंने,
एक आत्म को जीत के सबको, अपने वश में करा-लो।

पाश क्या है ? (मूल गाथाएँ- 39 से 43)

24 कई जीव भव पाश में बन्धकर, दुःख से सदा बिलखते,
बन्धन-मुक्त बने तुम गौतम! कैसे विचरण करते?
समाधान इसका लेकर के, बन्धन मुक्ति पा-लो।

25 तीव्र राग द्वेष मोहादि, पाश बड़े हैं भयंकर,
त्याग-तपस्या से काटा है, ज्ञान-क्रिया में रमकर,
लघुभूत हो विचरण करके, भव का पाश छुड़ा-लो।

भव तृष्णा का उन्मूलन कैसे ? (मूल गाथाएँ- 44 से 48)

26 विषफल देती एक लता जो, अन्तर्मन में रहती,
खाने में उसका फल घातक, कैसे पाई मुक्ति?
तृष्णा ही है विष की बेलि, इससे खुद को बचा-लो।

27 दुष्कर्मों के दुष्फल लगते, लोभवृत्ति अधमाई,
मैंने जड़ से काटी तृष्णा, विचरण है सुखदाई,
भव की लता उखाड़ो जड़ से, सिद्धि अमृत पा-लो।

अग्नियाँ कौन सी हैं और उनका निर्वापण कैसे ?
(मूल गाथाएँ- 49 से 53)

28 धधक रही है घोर अग्नियाँ, जो तन को है जलाती,
कैसे तुमने इन्हें बुझाया, क्या इनके प्रतिघाती?
दूर करो अब ये भी संशय, अपना सत्त्व बचा-लो।

29 महामेघ के उत्तम जल से, अविरल सिंचन करता,
नहीं जलाती है ये मुझको, अगन नीर से बुझता,
जलने से यदि बचना हो तो, पावक सभी बुझा-लो।

30 क्रोध, मान और लोभादि को, जलती अग्नि बताया,
श्रुत, शील और तपचर्या को, उत्तम जल बतलाया,
श्रुत की शीतल जल धारा से, मन को शांत बना-लो।

मन रूपी दुष्ट अश्व का निग्रह कैसे ?

(मूल गाथाएँ- 54 से 58)

31 चढ़े हुए तुम दुष्ट अश्व पर, इधर-उधर वह जाता,
फिर भी कैसे गौतम! तुमको, कुपथ नहीं ले जाता?
चंचल और भयानक है वो, कैसे उसे सम्भालो?

32 जाने को उन्मार्ग कभी भी, जब होता वह उद्यत,
शास्त्रज्ञान की रस्सी लेकर, करता उसको संयत,
कुपथ नहीं ले जाता फिर वो, सावधान बन चालौ।

33 मन ही रौद्र दुष्ट अश्व है, इधर-उधर जो दौड़े,
अधीन किया है उसको मैंने, सुपथ कभी ना छोड़े,
श्रुत शिक्षा से उत्तम बनता, मन को सदा सम्भालो।

मार्ग कौन सा है ? (मूल गाथाएँ- 59 से 63)

34 कुपथ बहुत है इस जगति में, जीव भ्रमित हो जाते,
सत्पथ से वे च्युत हो जाते, नाना दुःख को पाते,
फिर भी तुम नहीं भटके गौतम! इसका राज निकालो।

35 जिनप्ररूपित पथ जो चलता, अथवा उत्पथ जाता,
उन सबको ही जान लिया है, जिससे नहीं भटकाता,
सुपथ-कुपथ का ज्ञान कराके, कुपथ सदा ही टाळौ।

36 एकान्तवाद का व्रती पाखण्डी, उन्मार्गी कहलाता,
जिनकथित ही मार्ग है उत्तम, मुक्ति में ले जाता,
अनेकान्त है 'जिन' की शिक्षा, उसको ही अपना-लो।

जल प्रवाह में द्वीप किसे कहा है ?

(मूल गाथाएँ- 64 से 68)

37 जरा-मृत्यु के वेग में बहते, उनका द्वीप कहाँ है ?
धर्म-द्वीप आधार है उनका, उत्तम शरण वहाँ है,
धर्म प्रतिष्ठा का कारण है, इसका बोध करा-लो।

संसार रूपी समुद्र से पारगमन कैसे ?

(मूल गाथाएँ- 69 से 73)

38 महाप्रवाह के इस सिन्धु में, डोल रही है नौका,
चढ़के कैसे पार करोगे? नहीं भरोसा पल का,
अतिशय ज्ञानी जो बतलाते, उसको मन में धरा-लो।

39 भव सागर के पार करन को, जिस नौका को थामा,
छिद्र नही है उसमें कोई, पार करे अविरामा,
बीच मार्ग में डूबे नौका, छिद्र को बन्द करा-लो।

40 तन को नौका कहा गया है, जीव है उसमें नाविक,
कहा है इस संसार को सागर, पार करे मुनि तात्त्विक,
तिरने को नौका है साधन, छिद्र रहित ले चालौ।

अज्ञान-अन्धकार का विनाश कैसे ?

(मूल गाथाएँ 74 से 78)

41 भटक रहे हैं जीव जगत में, अंधकार में गहरे,
गहन तिमिर में अन्धे हो गये, कौन प्रकाश बिखेरे?
घोर अन्धेरा सूरज हरता, उससे संग जुड़ा-लो।

42 लोक प्रकाशित करने वाला, उदित हुआ है भास्कर,
जीवों को सम्पूर्ण लोक में, पथ दिखलाता सुखकर,
निर्मल उगा सूरज जग में, पा जाओ उजियालो।

43 राग-द्वेष सब छोड़ चुके जो, वे अर्हत हैं भास्कर,
नष्ट करे अज्ञान तिमिर को, वर्धमान जिनेश्वर,
सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तीर्थंकर, ज्योति उनसे पा-लो।

अनाबाध स्थान कौन सा है ? (मूल गाथाएँ- 79 से 84)

44 तन-मन के दुःखों से पीड़ित, जग में जीव यहाँ पर,
क्षेम, शिवंकर निराबाध हो, वो स्थान कहाँ पर?
जन्म-मरण से मुक्ति मिलती, उसका पता लगा-लो।

45 इसी लोक के अग्रभाग में, शाश्वत एक जगह है,
जहाँ मृत्यु और जरा कष्ट की, किंचित नहीं वजह है,
बड़ा कठिन है वहाँ पहुँचना, उसका ज्ञान करा-लो।

46 नाश करे जो जन्म-मरण का, वे जाते हैं वहाँ पर,
शोक मुक्त वे हो जाते हैं, निजानन्द में रम कर,
रत्नत्रयी का पालन करके, खुद को वहाँ बसा-लो।

प्रशस्ति (मूल गाथाएँ- 85 से 89)

47 श्रेष्ठ तुम्हारी प्रज्ञा गौतम! हर उत्तर है उत्तम,
छिन्न हुए सब संशय मेरे, धन्य-धन्य हे गौतम!
युग-युग तक सद्बोध मिलेगा, सुनकर सुपथ पा-लो।

48 केशी श्रमण ने वंदन करके, गौतम का यश गाया,
पंच महाव्रत वीर शासन का, केशी ने अपनाया,
सत्य धर्म के बनो उपासक, विनय से सत्य जगा-लो।

49 हुआ धर्म का अभ्युदय वहाँ, फैली महिमा घर-घर,
केशी-गौतम दोनों भगवन्, सदा प्रसन्न हों हम पर,
श्रुत-संयम-व्रत-नियम लेकर, गुरुवर के गुणा गा-लो।

सूक्तियाँ

1. **पन्ना समिक्खए धम्मं।** -23/25
धर्म तत्त्व की समीक्षा स्वयं की प्रज्ञा से होती है।

2. **जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगप्पओयणं।** -22/32
'मैं साधु हूँ' इस प्रकार के बोध के लिए ही वेष (लिंग) का प्रयोजन है।

3. **अह भवे पइन्ना उ, मोक्खसब्भूयसाहणे।**
नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं चेव निच्छए। -22/33
निश्चय दृष्टि से सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही मोक्ष के वास्तविक साधन हैं।

4. **एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य।** -23/38
न जीता हुआ अपना आत्मा ही शत्रु है, चार कषाय और पाँच इन्द्रियाँ शत्रु हैं।

5. **भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया।** -23/48
सांसारिक तृष्णा भयंकर लता है, उसके असातादि भयंकर दुष्कर्म फल लगते हैं।

6. **कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय-सील-तवो जलं।**
सुयधाराभिहया सन्ता, भिन्ना हु न डहन्ति मे।। -23/53
कषाय अग्नि है, श्रुत, शील और तप जल है। श्रुत की शीतल जलधारा से अग्नि बुझ जाती है।

7. **पधावंतं निगिण्हामि, सुयरस्सीसमाहियं।** -23/56
मन रूपी दुष्ट घोड़े को श्रुतज्ञान की रस्सी से निग्रह करो।

8. **सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे।** -23/63
वीतराग जिनेन्द्र कथित सन्मार्ग (अनेकान्त) मार्ग ही उत्तम मार्ग है।

9. **जरा-मरणवेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं।**
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तयं।। -23/68
जरा और मरण के वेग से बहते हुए प्राणियों के लिए धर्म ही द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है तथा उत्तम शरण है।

10. **जा उ अस्साविणी नावा, न सा पारस्स गामिणी।**
जा निरस्साविणी नावा, सा उ पारस्स गामिणी।। -23/71

जो नौका छिद्र वाली होती है, वह समुद्र के पार नहीं ले जा सकती है, लेकिन जो नौक छिद्ररहित होती है, वही पार ले जा सकती है अर्थात् जो साधक कर्माश्रव छिद्रों को बन्द कर देता है वह भव सागर पार कर लेता है।

11. **सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ।** -23/73

शरीर को नौका और जीवात्मा को उसका नाविक कहा गया है।

चौबीसवाँ अध्ययन : प्रवचन-माता

अध्ययन-सार गीतिका

साधु के व्रत की सुरक्षा, इनसे होती सर्वदा,
अष्ट प्रवचन मात करती, अशुभ से है अलविदा।
रक्षा करे ये रात-दिन, साधकों की साधना,
मुक्त करती भव-भ्रमण से, इनकी सम्यक् पालना।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

अष्ट प्रवचन माताएँ (मूल गाथाएँ- 1 से 3)

1 पाँच समिति तीन है गुप्ति, अष्ट है प्रवचन माता,
सम्यक् पालन करके साधक, परम लक्ष्य को पाता,
माता के सम रक्षा करती, इनका ध्यान रखा-लो।

2 ईर्या, भाषा और एषणा, आदानम् उच्चारम्,
मन-वच-काया की गुप्ति से, है साधु आचारम्,
अन्तर्हित है प्रवचन इनमें, पथ का बोध करा-लो।

चौबीसवाँ अध्ययन : प्रवचन-माता

अध्ययन-सार गीतिका

साधु के व्रत की सुरक्षा, इनसे होती सर्वदा,
अष्ट प्रवचन मात करती, अशुभ से है अलविदा।
रक्षा करे ये रात-दिन, साधकों की साधना,
मुक्त करती भव-भ्रमण से, इनकी सम्यक् पालना।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

अष्ट प्रवचन माताएँ (मूल गाथाएँ- 1 से 3)

1 पाँच समिति तीन है गुप्ति, अष्ट है प्रवचन माता,
सम्यक् पालन करके साधक, परम लक्ष्य को पाता,
माता के सम रक्षा करती, इनका ध्यान रखा-लो।

2 ईर्या, भाषा और एषणा, आदानम् उच्चारम्,
मन-वच-काया की गुप्ति से, है साधु आचारम्,
अन्तर्हित है प्रवचन इनमें, पथ का बोध करा-लो।

समितियाँ

ईर्या समिति की परिशुद्धि (मूल गाथाएँ- 4 से 8)

3 ईर्या की परिशुद्धि करले, कारण चार से साधक,
काल, मार्ग और आलम्बन, यतना से हो पालक,
बोध अहिंसा का हो सब में, ईर्या शुद्धि पालौ।

4 दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहा है, ईर्या का आलम्बन,
उचित कहा है दिन में विचरण, मार्ग है उत्पथ वर्जन,
निरालम्ब से संयम हानि, निष्ठापूर्वक पालौ।

5 द्रव्य, क्षेत्र और काल भाव से, प्रतिपल यतना करना,
चलो देखके चार हाथ तक, कोई प्राण न हरना,
बिना ध्येय के गमन नहीं हो, अयतना को टाळौ।

6 इन्द्रियादि विषयों का वर्जन, गमन क्रिया में रखना,
पाँच तरह का स्वाध्याय भी, चलते वक्त न करना,
गमन सदा उपयोग सहित हो, एकतान हो चालौ।

भाषा समिति का विवेक (मूल गाथाएँ- 9 से 10)

7 त्यागे साधक वाक् चपलता, हास्य और भय विकथा,
क्रोध, मान, माया भी त्यागे, और लोभ विकलता,
परिमित वाणी दोष रहित हो, हित-मित वचन सजालो।

एषणा समिति की विशुद्धि (मूल गाथाएँ- 11 से 12)

8 ग्रहण, गवेषण, परिभोगेषण, इनमें रहे सजगता,
शय्या, उपधि और आहार के, शोधन में हो कुशलता,
सम्यक् करे प्रवृत्ति इनमें, दोष सैंतालीस टाळौ।

9 क्यूं, कैसे, किसलिए बनाया, क्या आहार प्रयोजन,
लेने के पहले मुनि करले, उपयोग सहित अन्वेषण,
उपधि और शय्या आदि में, यही दृष्टि अपना-लो।

आदान-निक्षेप समिति की विधि (मूल गाथाएँ- 13 एवं 14)

10 भण्डोपकरण लेने-रखने में, साधक करले शोधन,
रजोहरण से करे प्रमार्जन, चक्षु से प्रतिलेखन,
विधि पूर्वक इनका पालन कर, अशुभ कर्म को टाळौ।

परिष्ठापन समिति की विधि (मूल गाथाएँ- 15 से 18)

11 परिष्ठापन के योग्य वस्तु को, यतना से ही परठे,
जहाँ न कोई आवे-देखे, प्राणी की हिंसा वरजे,
सभ्यजनों के सम्मत हो उस, योग्य भूमि पर डालो।

गुप्तियाँ (मूल गाथा- 19)

12 मन, वाणी और काया का, गोपन गुप्ति कहलाता,
अशुभ कर्म का निग्रह होता, जिन-प्रवचन फरमाता,
संयम में निर्मलता आती, अयोगी बन चालौ।

मनोगुप्ति का स्वरूप (मूल गाथाएँ- 20 एवं 21)

13 मनोगुप्ति के चार भेद हैं, इनके रूप को जानो,
विद्यमान सत्ता का चिंतन, उसको सत्य मानो,
असत् चिंतन मृषायोग है, उसका चिंतन टाळौ।

14 सत्-असत् दोनों का चिंतन, मिश्रयोग कहलाता,
सत्-असत् दोनों नहीं जिसमें, व्यवहार योग कहलाता,
नीर-क्षीर विवेकी बनकर, असत् दृष्टि छुड़ा-लो।

15 समारम्भ, संरम्भ और, आरम्भ दोष निवारो,
सोच नहीं हो पर-पीड़ा की, अशुभ ध्यान को टारो,
प्राण हरण के भाव न लाओ, शुभ संकल्प जगा-लो।

वचन गुप्ति का स्वरूप (मूल गाथाएँ- 22 एवं 23)

16 इसी तरह से वचन गुप्ति के, चार भेद बतलाये,
सत्य, असत्य, मिश्र, व्यवहार, वचन रूप गिनाये,
मनोगुप्ति से अर्थ समझ के, असत् वचन को टाळौ।

काय गुप्ति का स्वरूप (मूल गाथाएँ- 24 एवं 25)

17 काया के व्यापार में साधक, रखले पूरी यतना,
समारम्भ, संरम्भ तथा, आरम्भ से पूरा बचना,
हिंसाजनक क्रियाएँ हैं ये, अवध जीवी बन चालौ।

18 पर को चोट नहीं पहुँचाये, ना उसमें हो उद्यत,
प्राण हरे नहीं कभी किसी के, हिंसा में नहीं शिरकत,
मन-वच-काया से आश्रव के, द्वार बन्द कर डालो।

समिति-गुप्ति के आचरण का फल
(मूल गाथाएँ- 26 एवं 27)

19 प्रवृत्ति रूप समिति जानो, निवृत्ति रूप है गुप्ति,
चारित्र साधना की शुद्धि है, मुक्ति की है युक्ति,
इनके सम्यक् आराधन से, क्षायिक दीप जला-लो।

सूक्तियाँ

1. **एयाओ अट्ठ समिईयो, समासेण वियाहिया।**
   दुवालसंगं जिणक्खायं, मायं जत्थ उ पवयणं।। -24/3
   संक्षेप में आठ समितियाँ कही गई हैं जिनमें जिनेन्द्र कथित द्वादशांगरूप, समग्र प्रवचन अन्तर्भूत है। (समितियाँ पाँच और गुप्तियाँ तीन कही गई हैं। गुप्तियाँ एकान्त निवृत्तिरूप ही नहीं, प्रवृत्तिरूप भी होती हैं, अतः प्रवृत्तिरूप अंश की अपेक्षा से उन्हें भी समिति कह दिया है।)

2. **एयाओ पंच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे।**
   गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो।। -24/26
   ये पाँचों समितियाँ चारित्र की प्रवृत्तिरूप अंग हैं और तीन गुप्तियाँ अशुभ विषयों से निवृत्तिरूप कही गई हैं।

पच्चीसवाँ अध्ययन : यज्ञीय

अध्ययन-सार गीतिका

मन के विकारों की सभी, आहुति देना यज्ञ है,
साधता जो आतमा, यज्ञार्थी वो तत्त्वज्ञ है।
ब्रह्मव्रत से ब्रह्म होता, श्रमण है समभाव से,
शूद्र और क्षत्रिय होते, कर्म के अनुभाव से।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

पूर्व परिचय : (अन्य ग्रन्थों के आधार से)

1 वाराणसी नगरी में रहते, महायशस्वी याज्ञिक,
विजयघोष जयघोष सहोदर, कर्म-काण्ड में वैदिक,
हिंसाजनित यज्ञ करते थे, भाव-यज्ञ अपना-लो।

2 एक दिन गंगा में देखा था, साँप निगलता दादुर,
इतने में एक कुरर आया, लगा निगलने फणधर,
मरणकाल में ये आसक्ति, देख विरक्ति जगा-लो।

3 दृश्य देख जयघोष हुआ, प्रतिबोधित निर्मोही,
पंचमहाव्रत धारण करके, बना श्रमण आरोही,
जन्म-मरण से जो मुक्ति दे, दया-धर्म को पालौ।

जयघोष मुनि का वाराणसी में पदार्पण

(मूल गाथाएँ- 1 से 5)

4 यम-नियम में रत रहता था, महामुनि निष्कामी,
इन्द्रिय निग्रह करने वाला, मोक्ष पंथ अनुगामी,
अप्रतिबद्ध हो विचरण करता, सत्पथ को अपना-लो।

5 एक बार जयघोष मुनि, वाराणसी में आये,
उसी समय में विजयघोष ने, द्रव्य यज्ञ करवाये,
भिक्षा हेतु यज्ञ में पहुँचे, भिक्षा नियम निभा-लो।

विजयघोष द्वारा भिक्षा देने का निषेध

(मूल गाथाएँ 6 से 8)

6 मुनिवर को नहीं पहचाना, विजयघोष ब्राह्मण ने,
भिक्षा जब माँगी मुनिवर ने, ब्राह्मण लगा बिगड़ने,
नहीं मिलेगी भिक्षा तुमको, अन्य जगह पड़तालो।

7 षट्रस भोजन उन्हें मिलेगा, जो वेदों के ज्ञाता,
यज्ञार्थी, ज्योतिष के ज्ञाता, स्व-पर के परित्राता,
पारगामी जो धर्मशास्त्र के, अन्य को अभी निकालो।

समभावी मुनि का विजयघोष से प्रति प्रश्न

(मूल गाथाएँ- 9 से 15)

8 रुष्ट-तुष्ट नहीं हुए मुनि, भिक्षा नहीं देने पर,
मोक्ष गवेषक मुनिवर बोले, याज्ञिक हित को धर कर,
खान-पान के लिए न बोले, आशय इसका निकालो।

9 विप्र! बताओ यदि जानते, वेदों का क्या मुख है ?
यज्ञ का मुख भी बतलाओ, धर्मों का क्या मुख है ?
नक्षत्रों में कौन प्रमुख है ? अपना ज्ञान लगा-लो।

10 कौन समर्थ है बतलाओ जो, उद्धार करे स्व-पर का?
उनको भी तुम नहीं जानते, इंतजार उत्तर का,
प्रश्न किये जो मैंने तुमसे, अन्तर मन को जगा-लो।

11 मुनिवर के इन प्रश्नों का, जब मिला न कोई उत्तर,
हाथ जोड़कर के द्विज बोला, मुझे पता नहीं मुनिवर,
बतलाने की कृपा करो मुनि, संशय सभी निकालो।

जयघोष मुनि द्वारा प्रश्नों के उत्तर
(मूल गाथाएँ- 16 से 18)

12 अग्निहोत्र है मुख वेदों का, यज्ञार्थी यज्ञों का,
नक्षत्रों में चन्द्र प्रमुख है, काश्यप है धर्मों का,
आदि काश्यप ऋषभदेव है, मन में इन्हें बसा-लो।

13 ज्ञान वेद का अर्थ है जिससे, इस संसार को जानो,
कर्मों से संसार-चक्र है, मुक्ति युक्ति जानो,
अग्निहोत्र है तप और संयम, कर्म आहुति डालो।

14 भाव-यज्ञ को करने वाला, यज्ञार्थी कहलाता,
नक्षत्रों में चन्द्र ही केवल, तिथि का ज्ञान कराता,
आदि धर्म की करने वाले, ऋषभदेव गुण गा-लो।

15 यज्ञवादी को समझा तुमने, स्व-पर का उद्धारक,
विद्या और गुणों से लगते, कोसों दूर वे साधक,
ज्ञान गुणों से हैं अनजाने, इसकी समझ करा-लो।

16 तप-विद्या के बल पर वे, बाहर शान्त हैं लगते,
आत्मज्ञान बिन अन्तस् में, कषाय आग में जलते,
कैसे वे उद्धार करेंगे? झूठा भ्रम ना पालौ।

ब्राह्मण कौन ? (मूल गाथाएँ- 19 से 30)

17 ज्ञानी जिनको ब्राह्मण कहते, अग्नि सम वे पूजित,
अनासक्त रहते स्वजनों से, आर्य वचन से पोषित,
शुद्ध स्वर्ण से तेजस्वी हों, राग-द्वेष-भय टाळौ।

18 जितेन्द्रिय, तपस्वी है जो, उसको ब्राह्मण कहते,
सुव्रती और शान्त है जो, हिंसा कभी न करते,
क्रोध, लोभ के वश ना कोई, झूठे बोल निकालो।

19 अदत्त ग्रहण जो नहीं करता, उसको ब्राह्मण कहते,
मन-वच-काया से मैथुन का, सेवन कभी न करते,
काम-भोग में लिप्त नहीं हो, जल में कमल खिला-लो।

20 गृहत्यागी, भिक्षाजीवी हो, उसको ब्राह्मण कहते,
पूर्ण अकिंचन होते हैं वे, अनासक्त हो रहते,
ज्ञातिजनों के सम्बन्धों की, याद कभी ना पालौ।

21 जहाँ यज्ञ में पशुवध होता, वहाँ पाप हैं बन्धते,
ऐसे यज्ञ कभी भी कोई, त्राण नहीं दे सकते,
कर्म बड़े बलवान हैं जानो, उन्हें भस्म कर डालो।

श्रमण कौन ? (मूल गाथाएँ 31 से 35)

22 श्रमण नहीं होता है कोई, केवल मुंडित होने से,
ब्राह्मण भी नहीं होता केवल, 'ओम्' नाम जपने से,
बाह्यवेश व्यवहार है केवल, आत्मगुणों को पा-लो।

23 वनवासी होने से केवल, कोई मुनि नहीं होता,
चीवर मात्र पहनने से ही, तापस भी नहीं होता,
जो इनके गुण धारण करता, उनको पूज्य बना-लो।

24 समभावों से श्रमण कहाता, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण,
तपश्चरण से होता तापस, ज्ञान मुनि का लक्षण,
शुभ कर्मों से साधक होते, कर्म का मर्म निकालो।

25 निज अनुभव से ऐसा ही, प्रकट किया अर्हत् ने,
ब्राह्मण वे ही होते जिनमें, गुण लगते हैं निखरने,
ऐसे द्विज उद्धारक होते, उनके गुण अपना-लो।

विजयघोष का कृतज्ञता ज्ञापन (मूल गाथाएँ- 36 से 39)

26 संशय मिटा विप्र का सारा, अर्हत् धर्म सुहाया,
ब्राह्मण-तत्त्व का मुनिवर ने, सही अर्थ समझाया,
गुण सम्पन्न द्विजोत्तम होते, अर्थ समझ ये डालो।

27 मुनिवर तुम यज्ञों के कर्त्ता, वेदों के तुम ज्ञाता,
धर्मों के तुम पारगामी हो, स्व-पर के हो त्राता,
भक्ति-भाव से विनती करके, भिक्षा लाभ कमा-लो।

संसार मुक्त होने का विजयघोष को उपदेश
(मूल गाथाएँ- 40 से 45)

28 नहीं प्रयोजन है भिक्षा से, समझो मेरी बातें,
श्रमणधर्म में दीक्षित होकर, छोड़ो जग के नाते,
भव-भ्रमण का अन्त करो तुम, मोक्ष मार्ग अपना-लो।

29 भोगों से जिसकी आसक्ति, भव-भ्रमण में फँसता,
विरक्त नहीं जुड़ता भोगों से, मुक्त बना वह रहता,
दुर्बुद्धि चिपके भोगों से, इनसे बन्ध छुड़ा-लो।

30 सुन करके उपदेश मुनि का, विप्र बना वैरागी,
दीक्षित होकर बन गया वह, परम धर्म अनुरागी,
क्षय करके संचित कर्मों का, अनुत्तर सिद्धि पा-लो।

सूक्तियाँ

1. **अग्गिहोत्तमुहा वेया, जन्नट्ठी वेयसां मुहं।।**
नक्खत्ताण मुहं चंदो, धम्माणं कासवो मुहं।। -25/16

1. वेदों का मुख अग्निहोत्र है (अर्थात् कर्मरूपी इन्धन लेकर धर्मध्यानरूपी अग्नि में उत्तम भावना रूपी घृताहुति देना अग्निहोत्र है, ऐसे अग्निहोत्र में मन के सभी विकार स्वाहा हो जाते हैं। वेद का अर्थ ज्ञान है। जब ज्ञान के द्वारा सर्व द्रव्यों का स्वरूप भली-भांति जान लिया जाता है, तब कर्मजन्य संसार चक्र से अपनी आत्मा को मुक्त करने के लिए तप, संयमादि अग्नि के द्वारा कर्मरूप इन्धन को जलाकर सद्भावना रूप आहुति दी जाती है।)
2. यज्ञों का मुख यज्ञार्थी है (अर्थात् आत्मसाधक ही यज्ञार्थी है।)
3. नक्षत्रों का मुख चन्द्रमा है (अर्थात् नक्षत्रों के प्रकाशित होते हुए भी चन्द्रमा के बिना रात्रि अमावस्या कहलाती है और काल का ज्ञान भी नक्षत्रों के बजाय चन्द्रमा से ही होता है।)
4. धर्मों के मुख काश्यप अर्थात् भगवान् ऋषभदेव हैं (इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में धर्म का प्रवर्तन सर्वप्रथम उन्होंने ही किया था। भगवान् ने अपने वर्षीतप का पारणा काश्य अर्थात् इक्षुरस से किया अतः काश्यप कहलाए।)

2. **जो न सज्जइ आगन्तुं, पव्वयन्तो न सोयई।**
रमए अज्जवयणंमि, तं वयं बूम माहणं।। -25/20

जो स्वजनादि के आने पर आसक्त नहीं होता और उनके चले जाने पर शोक नहीं करता, किन्तु वीतराग के आर्यवचन में रमण करता है, वह ब्राह्मण है।

3. **समयाए समणो होइ, बम्भचेरेण बम्भणो।**
नाणेण य मुणी होइ, तवेणं होइ तावसो।। -25/32

समभाव धारण करने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य पालन से ब्राह्मण होता है, सम्यग्ज्ञान से मुनि होता है और तपश्चरण से तापस होता है।

4. **कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।**
वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा।। -25/33

कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शुद्र होता है।

5. **उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई।**
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई।। -25/41

भोगों के कारण कर्मों का बन्ध होता है। अभोगी कर्मों से लिप्त नहीं होता। भोगी संसार में भ्रमण करता है जबकि अभोगी उससे विमुक्त हो जाता है।

छब्बीसवाँ अध्ययन : सामाचारी

अध्ययन-सार गीतिका

साधु की आचार संहिता, पालना अनिवार्य है,
सम्यक् व्यवस्था के लिए यह, साधु का कर्त्तव्य है।
आचरण से पुष्ट होती, रत्नत्रय की साधना,
भव पार पाने के लिए, कोई न हो अवहेलना।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

सामाचारी का प्रयोजन (मूल गाथा- 1)

1 कथन करुँगा उस चर्या का, दुःखों से जो दे मुक्ति,
निर्ग्रन्थ मुनि प्रतिपालन कर, भव पार करन की युक्ति,
मुनिजन की व्यवहार रूप यह, सामाचारी को पालौ।

सामाचारी के प्रकार (मूल गाथाएँ- 2 से 7)

2 प्रयोजन से ही बाहर जाये, करे 'आवस्सियं' वाचन,
निवृत्त होकर जब लौटे तो, करे 'निसीहियं' वाचन,
लक्ष्य चेतना रहे गमन में, इसका ध्यान रखा-लो।

3 गुरु आज्ञा से करे प्रवृत्ति, इसको 'आपृच्छा' कहते,
परकरण करे आज्ञा से, उसको 'प्रतिपृच्छा' कहते,
निरुद्देश्य नहीं आये-जाये, इसकी आदत डालो।

4 भिक्षा में जो प्राप्त हुए हैं, दूजों को दे आमन्त्रण,
लाने को जाये तब पूछे, क्या लाऊँ मैं मुनिगण?
इसे 'छन्दना' बतलाया है, शिष्ट भाव अपना-लो।

5 जाने इच्छा अन्य साधु की, तदनुरूप सेवा करना,
अथवा काम कराना उनसे, 'इच्छाकार' बरतना,
अनुग्रह हो आपस में सबके, संघीय जीवन पालौ।

6 प्रमादवश कोई चूक हुए तो, 'मिच्छा दुक्कड़म' कहना,
'मिथ्याकार' सामाचारी है, आतम निन्दा करना,
प्रमादवश कोई भूल हुए तो, अपने दोष निकालो।

7 गुरुवर देवे सूत्र-वाचना, अथवा कभी पुकारे,
निर्वाह करे तब 'तथाकार' का, 'तहत्ति' शब्द उच्चारे,
नम्र भाव से माने उसको, आग्रह भाव छुड़ा-लो।

8 गुरुदेव जब भी आये तो, उठकर सम्मुख जाये,
'अभ्युत्थान' सामाचारी है, सेवा कर हर्षाये,
गुरुपूजा करके साधुजन, गुरुता का धन पा-लो।

9 त्रिरत्नों की प्राप्ति हेतु, 'उपसम्पदा' पाये,
अन्य गणों में जाकर भिक्षु, अपना ज्ञान बढ़ाये,
गुरु आज्ञा से ऐसा करले, इसका ध्यान रखा-लो।

10 दशविध सामाचारी बतलायी, साधु के जीवन में,
सद्-व्यवहार बढ़े आपस में, संघ के संयोजन में,
सम्यक् इसकी करो साधना, संघ को पुष्ट बना-लो।

दिनचर्या विषयक सामाचारी (मूल गाथाएँ- 8 से 10)

11 प्रथम प्रहर के चतुर्थ भाग में, दो घड़ी सूरज आए,
वस्त्र-पात्र का प्रतिलेखन कर, गुरु वन्दन को जाये,
शिष्यजनों के लिए आवश्यक, गुरु आज्ञा को पालौ।

12 हाथ जोड़ कर पूछे- भंते! क्या मुझको अब करना?
वैयावृत्त्य का कहे गुरु तो, अग्लान बरतना,
स्वाध्याय का यदि कहे तो, मन को उसमें रमा-लो।

उत्सर्गरूप से दैवसिक चर्या (मूल गाथाएँ- 11 से 12)

13 दिन के चार भाग में करले, उत्तरगुण आराधन,
प्रथम प्रहर में स्वाध्याय हो, दूजे में हो चिन्तन,
तीजे में हो भिक्षाचारी, सूत्र पाठ फिर गा-लो।

रात्रिचर्या (मूल गाथाएँ- 17 एवं 18)

14 रात्रि के भी चार भाग में, उत्तरगुण आराधन,
प्रथम प्रहर में स्वाध्याय हो, दूजे में हो चिन्तन,
शयन करे साधु तीजे में, सूत्र पाठ फिर गा-लो।

प्रतिलेखन चर्या (मूल गाथाएँ- 22 एवं 23)

15 पौन पौरुषी बीते जब भी, वन्दन कर आज्ञा ले ले,
प्रतिलेखन हो विधि क्रम से, मुँहपति गोच्छग ले,
वस्त्र प्रतिलेखना अन्त में होती, साधु नियम निभा-लो।

प्रतिलेखन विधि (मूल गाथाएँ- 24 से 28)

16 तन से ऊँचा रखे वस्त्र को, फिर उसको फैलाए,
उत्कट आसन में रहकर, कर में वस्त्र दबाए,
करे निरीक्षण चहुँ ओर से, प्रथम विधि को पालौ।

17 जीव यदि कोई दीखे तो, यतना से झटकावे,
अगर नहीं छूटे तो उसको, यतना से पूंजावे,
उपयोग सहित हो प्रतिलेखन, जीव की रक्षा पालौ।

18 प्रतिलेखन के करने में हो, छः दोषों का वर्जन,
सात और भी दोष कहे हैं, ना उनका भी सेवन,
विधि से हो प्रतिलेखनचर्या, इसका ध्यान रखा-लो।

प्रतिलेखन के निमित्त से विराधक-आराधक
(मूल गाथाएँ- 29 से 31)

19 प्रतिलेखन में वर्जित है, पढ़ना और पढ़ाना,
परस्पर कथा-वार्ता करना, प्रत्याख्यान कराना,
भिक्षुजन आराधक बनकर, पाप कर्म को टाळौ।

सार-संक्षेप (मूल गाथाएँ- 32 से 53)

20 भक्तपान का करे गवेषण, संयम की ना हो हानि,
प्रतिलेखन के करने में भी, यतना पूर्ण निभानी,
स्वाध्याय में रत रह कर, दुःख से मुक्ति पा-लो।

21 श्रमण-सूत्र का पाठ करे, अतिचारों का आलोचन,
काया का उत्सर्ग करे, आत्म-ध्यान में आरोहण,
सामाचारी का पालन करके, भव का बन्ध छुड़ा-लो।

सूक्तियाँ

1. **वेयावच्चे निउत्तेणं, कायव्वं अगिलायओ।**
सज्झाए वा निउत्तेणं, सव्वदुक्खविमोक्खणे।। -26/10

वैयावृत्य में नियुक्त किया गया साधक ग्लानरहित होकर सेवा करे अथवा समस्त दुःखों से विमुक्त करने वाले स्वाध्याय में नियुक्त किया गया साधक प्रसन्न मन से स्वाध्याय करे।

2. **पढमं पोरिसिं सज्झायं, बीयं झाणं झियायई।**
तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीए सज्झायं।। -26/12

दिन के प्रथम प्रहर में साधु स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर में स्वाध्याय में किये गये सूत्रों पर चिन्तन करे अथवा धर्मध्यान शुक्लध्यान रूप आत्मध्यान करे, तीसरे प्रहर में निर्दोष भिक्षाचर्या करे और चौथे प्रहर में पुनः स्वाध्याय करे।

3 **वेयण- वेयाणच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए।**
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए।। -20/33

साधक को क्षुधा- वेदना को उपशान्त करने के लिए, वैयावृत्त्य के लिए, ईर्यासमिति के पालन के लिए, संयम के लिए, प्राणों की रक्षा के लिए और धर्म चिन्तन के लिए आहार-पानी ग्रहण करना चाहिए।

सत्ताईसवाँ अध्ययन : खलुंकीय

अध्ययन-सार गीतिका

गुरु विनय और नियम-निष्ठा, शिष्य जो नहीं धारता,
खलुंक सा उद्दण्ड बन कर, करता रहता धृष्टता।
तज अपेक्षा शिष्य से फिर, गुरु अकेला चल-चले,
आत्मार्थीजन को उचित है, अपनी समाधि साध-ले।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

गार्ग्यमुनि का परिचय (मूल गाथाएँ- 1 एवं 2)

1 आचार्य गुणों से युक्त मुनि, गर्गाचार्य गुणनायक,
सर्वशास्त्र विशारद थे वे, स्थविर थे गणनायक,
कुशिष्यों के क्लेश को सहते, चित्त समाधि बसा-लो।

2 विनीत बैल गाड़ी में जुतकर, मार्ग पार कर जाता,
वैसे ही संयमरत साधक, संसार पार कर जाता,
शिष्य-गुरु सुयोग मिले तो, पार जगत कर डालो।

अविनीत शिष्य दुष्ट बैल के समान (मूल गाथाएँ- 3 से 8)

3 दुष्ट बैल से गाड़ीवान को, मन में क्लेश उपजता,
चित्त समाधि विचलित होती, रह-रह क्रोध दहकता,
कुशिष्यों का संग त्याग कर, आर्त्त-रौद्र को टाळौ।

4 क्रुद्ध बैल तोड़े जुए को, या उत्पथ में जाता,
गिर पड़ता मारग में या, उछल कूद मचाता,
कुशिष्यों का संग त्याग कर, दुःख से मुक्ति पा-लो।

5 भाग-खड़ा हो जाता छल से, काबू में नहीं आता,
ऐसा दुष्ट बैल वाहक को, मंजिल नहीं पहुँचाता,
कुशिष्यों का संग त्याग कर, मुक्ति मंजिल पा-लो।

कुशिष्यों के कारण गार्ग्याचार्य का चिन्तन
(मूल गाथाएँ- 9 से 15)

6 देख दुष्टता निज शिष्यों की, चिंतन चला गुरु का,
कोई गौरव करे ऋद्धि का, कोई सुख-सुविधा का,
कुशिष्यों का संग त्याग कर, संयम मार्ग बचा-लो।

7 जाते नहीं भिक्षा चर्या में, अपने मद में रहते,
नहीं छोड़ते अपने हठ को, समझाने से लड़ते,
कुशिष्यों का संग त्याग कर, भिक्षावृत्ति निभा-लो।

8 समझाने से नहीं समझते, गुरु में दोष निकाले,
उलटा करे आचरण सारे, बहाने नये बना-ले,
झूठ बोलने से नहीं चूके, ऐसे शिष्य छुड़ा-लो।

9 गुरुआज्ञा बेगार समझ कर, उसे टालते रहते,
कहने पर वे भृकुटि चढ़ाते, अपनी राह ही चलते,
दुष्ट शिष्य का संग त्याग कर, आत्म-क्लेश मिटा-लो।

10 शिष्यों के इन दुराचार पर, ऐसा चिन्तन उभरा,
दीक्षा दी और शास्त्र पढ़ाया, समझाया भी गहरा,
भक्तपान से पोषित करके, मन में अब पछता-लो।

11 जैस पंख लगे हंसों के, दशों दिशा उड़ जाते,
वैसे ही ये शिष्य मेरे, स्वछन्द बने इतराते,
भूल गये उपकार सभी ये, इनसे संग छुड़ा-लो।

12 दुष्ट बैल के मिलने पर, वाहक खिन्न हो जाता,
वैसी ही इन शिष्यों से, लाभ नहीं कुछ पाता,
इनको छोड़ समाधि पाने, श्रेय मार्ग अपना-लो।

कुशिष्यों का त्याग एवं एकाकी विचरण

(मूल गाथाएँ- 16 एवं 17)

13 बार-बार समझाने पर भी, शिष्य नहीं जब चेते,
जहाँ समाधि विचलित होती, प्राज्ञ उसे तज देते,
सार नहीं इनके संग चलना, एकाकी बन चालौ।

14 गहरा चिन्तन किया गुरु ने, शिष्य मोह को छोड़ा,
दृढ़ता से तप संयम में, अपने मन को मोड़ा,
मृदु-मार्दव से समृद्ध होकर, आत्मभाव को पा-लो।

सूक्तियाँ

1. **वहणे वहमाणस्स, कन्तारं अइवत्तई।**
   जोए वहमाणस्स, संसारो अइवत्तई।। -27/2
   वाहन में जोड़े हुए विनीत बैल को हाँकते हुए पुरुष सुखपूर्वक अटवी से पार हो जाता है, उसी तरह संयम-मार्ग में जोड़े हुए सुशिष्यों को प्रवृत्त करते हुए गुरु या आचार्य इस संसार रूपी भवाटवी से पार हो जाता है।

2. **खलुंका जारिसा जोज्जा, दुस्सीसा वि हु तारिसा।**
   जोइया धम्मजाणम्मि, भज्जन्ति धिइदुब्बला। -27/8
   जैसे शकट में जोते हुए दुष्ट बैल वाहन तोड़ देते हैं, वैसे ही धर्मध्यान में जोते हुए कुशिष्य भी धैर्य से दुर्बल होने के कारण धर्मयान में जोतने पर उसे तोड़ देते हैं।

अट्ठाईसवाँ अध्ययन : मोक्षमार्ग-गति

अध्ययन-सार गीतिका

चार साधन मोक्षगति के, वीर ने फरमाये हैं,
ज्ञान-दर्शन चरित-तप, विस्तार से बतलाये हैं।
सम्यक्त्व पूर्वक हों तभी वे, मुक्ति के आधार हैं,
पुरुषार्थ करने से मिले, यह साधना का सार है।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

मोक्ष मार्ग : स्वरूप और माहात्म्य

(मूल गाथाएँ- 1 से 3)

1 ज्ञान-दर्शन-चरित-तप को, मोक्ष-मार्ग बतलाया,
वरदर्शी अरिहन्तों ने, निज अनुभव से फरमाया,
इसी मार्ग का आराधन कर, सिद्धगति को पा-लो।

सम्यग्ज्ञान : प्रकार, द्रव्य, गुण और पर्याय

(मूल गाथाएँ- 4 से 13)

2 पंचविध ज्ञान कहा जिनवर ने, श्रुत-आभिनिबोधिक,
अवधि-मनः-केवल को जानो, अर्थ बड़ा ही मार्मिक,
द्रव्य गुणों और पर्यायों की, इनसे समझ बना-लो।

3 गुण का जो आश्रय होता, उसे द्रव्य हैं कहते,
जो एक द्रव्य के आश्रित हैं, उनको गुण हैं कहते,
आश्रित हैं जो द्रव्य-गुणों के, उनको पर्याय कहा-लो।

4 धर्म-अधर्म-आकाश-काल, पुद्गल है अरु चेतन,
षट्द्रव्यात्मक लोक कहा है, वरदर्शी का प्रवचन,
पहले तीन एक-एक है, बाकी अनन्त कहा-लो।

5 धर्म का लक्षण गति कहा, अधर्म का है स्थिरता,
सब द्रव्यों का भाजन नभ है, लोक-अलोक समाता,
परिवर्तन है काल का लक्षण, इनका बोध करा-लो।

6 जीवों के लक्षण को जानो, ज्ञान-दर्शन और चरित,
तप-वीर्य-उपयोग भी उनमें, होते हैं सब संयुत,
जीव-अजीव में भेद की रेखा, लक्षण से समझा-लो।

7 पुद्गल के भी लक्षण जानो, शब्द-वर्ण और रस को,
गन्ध-तिमिर-उद्योत-प्रभा, आतप-छाँव-फरस को,
द्रव्य नित्य पर्याय अनित्य, इसका ज्ञान करा-लो।

सम्यग्दर्शन : प्रकार, तत्त्व, लक्षण और अंग

(मूल गाथाएँ- 14 से 31)

8 जीव-अजीव-बन्ध अरु आश्रव, पाप-पुण्य अरु संवर,
निर्जरा-मोक्ष तत्त्व ये नौ हैं, करना ज्ञान है हितकर,
साधक-बाधक तत्त्व जानके, अपना साध्य सम्भालो।

9 जिन-भाषित इन नव तत्त्वों पर, जो भी श्रद्धा करता,
प्राप्त उसे समकित होता है, हेतु मोक्ष का बनता,
निष्ठा से अनुशीलन करके, आत्म-भाव विकसा-लो।

10 दस प्रकार कहे समकित के, निमित्तों से बतलाये,
व्यवहारनय से रुचि भेद हैं, प्राज्ञों ने समझाये,
निश्चय से समकित निज गुण है, मोह छोड़ प्रगटा-लो।

11 अपनी रुचि से नौ तत्त्वों को, जानें श्रद्धा करते,
'निसर्ग रुचि' उसको कहते हैं, सहज भाव मन धरते,
सत्य वही जो कहा प्रभु ने, ऐसी श्रद्धा बसा-लो।

12 केवलज्ञानी या अन्यों से, सुनकर श्रद्धा करते,
'उपदेश रुचि' उसको कहते, सत्य ज्ञान मन धरते,
मोक्ष-मार्ग को सुनकर के भी, श्रद्धाभाव जगा-लो।

13 राग-द्वेष से मुक्त पुरुष की, आज्ञा में रुचि रखते,
तत्त्वों पर उनकी श्रद्धा को, 'आज्ञारुचि' हैं कहते,
आप्तजनों में श्रद्धा रखकर, अन्तस् वहाँ झुका-लो।

14 अंग शास्त्र या अंग बाह्य का, अवगाहन जो करते,
उनको जो समकित मिलता, 'सूत्र रुचि' हैं कहते,
सम्यग्दर्शन प्राप्ति के हित, आगम सिन्धु नहा-लो।

15 ज्यूं एक बीज के बोने से, अनेक बीज मिल जाते,
वैसे ही जब एक हेतु से, तत्त्वों में श्रद्धा पाते,
इसको 'बीज रुचि' कहते हैं, अन्तःकरण जगा-लो।

16 ग्यारह अंग प्रकीर्णक अरु, दृष्टिवाद को जाने,
अर्थ सहित अधिगत करने को, 'अभिगम रुचि' माने,
तत्त्वज्ञान को विकसित करने, आगम मर्म पचा-लो।

17 प्रमाण और नय की विधि से, द्रव्य-भाव सब जानें,
'विस्तार रुचि' कहते हैं इसको, सम्यग्दर्शन पाने,
प्रत्यक्ष-परोक्ष निरुपण करके, सत्य तथ्य निकालो।

18 दर्शन-ज्ञान-चरित-तप में, निष्ठा से रुचि रखते,
पाते इससे जो समकित को, 'क्रिया रुचि' हैं कहते,
शुद्ध क्रिया के अनुष्ठान से, निष्ठा दृढ़ बना-लो।

19 नहीं कुशल जो जिन प्रवचन में, परमत को ना जाने,
मिथ्यामत का आग्रह नहीं हो, अल्पबोध से माने,
'संक्षेप रुचि' उसको कहते हैं, श्रद्धा अटल जगा-लो।

20 जिन कथित द्रव्य-श्रुत-चरित, धर्म में श्रद्धा रखते,
ऐसे जीवों के समकित को, 'धर्म रुचि' हैं कहते,
जिनप्रवचन में श्रद्धा रखकर, सम्यग्दर्शन पा-लो।

21 तीन गुणों के प्रतिपादन से, सम्यक्त्वी पहचाने,
तत्त्ववेत्ता की सेवा करते, तत्त्व स्वरूप बखाने,
मिथ्यात्वी संसर्ग छुड़ाकर, समकित दृढ़ बना-लो।

22 सम्यक्त्व बिना चारित्र नहीं, चारित्र बिना भी दर्शन,
या तो दोनों युगपत् होते, या पहले होता दर्शन,
मोक्ष महल की पहली सीढ़ी, इस पर कदम बढ़ा-लो।

23 दर्शन बिना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान बिना चर्या ना,
मोक्ष मिले नहीं चरणहीन को, बिना मोक्ष शांति ना,
कर्म मुक्ति होती सद्गुण से, विश्वास दृढ़ बना-लो।

24 आठ अंग कहे समकित के, अन्तर के हैं चारों,
शेष चार बहिरंग है जानो, इनसे ही उजियारो,
सम्यग्ज्ञान इन्हीं से होता, मन में इन्हें सजा-लो

25 संदेह नहीं हो जिनवचनों में, पर दर्शन नहीं पालै,
शंका नहीं धर्म के फल में, झूठ दृष्टि ना चालै,
निज आतम के गुण ये चारों, कर पुरुषार्थ जगा-लो।

26 गुणीजनों की करे प्रशंसा, जिन शासन चमकाये,
धर्म मार्ग में अचल करे फिर, वत्सल भाव बहाये,
बाहर के ये गुण हैं चारों, धर्मसंघ प्रतिपालौ।

सम्यक् चारित्र के प्रकार (मूल गाथाएँ- 32 एवं 33)

27 चारित्र प्रथम है सामायिक, छेदोपस्थापन दूजा,
तीजा है परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसम्पराय चौथा,
यथाख्यात पाँचवाँ जानो, कर्म रिक्त कर डालो।

सम्यक् तप के भेद (मूल गाथा- 34)

28 दो प्रकार के तप कहे हैं, बाह्य और आभ्यन्तर,
छः छः भेद कहे दोनों के, सम्यक् पालन हितकर,
विशुद्ध बनाता आत्म तत्त्व को, बिना कामना पालौ।

चारों ही साधनों की उपयोगिता (मूल गाथाएँ- 35 एवं 36)

29 जीव ज्ञान से तत्त्व जानता, दर्शन से श्रद्धा करता,
कर्म-निरोध चरण से होता, तप है शुद्धि धरता,
क्षय करके संचित कर्मों का, सिद्धि पद को पा-लो।

सूक्तियाँ

1. **नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।**
एस मग्गो त्ति पन्नतो, जिणेहिं वरदंसिहिं।। -28/2
ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप, ये चारों मिलकर मोक्ष मार्ग है, ऐसा प्रत्यक्षदर्शी (केवलज्ञानी-केवलदर्शी) जिनेन्द्र देवों ने बताया है।

2. **गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।**
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे।। -28/6
गुणों का आश्रय (आधार) द्रव्य कहलाता है। जो द्रव्य के आश्रित (वर्ण-गन्ध-रसादि या ज्ञानादि धर्म) हैं, वे गुण हैं। जो द्रव्य और गुण दोनों के आश्रित हों, उन्हें पर्याय कहते हैं।

3. **धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल-जन्तवो।**
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं।। -28/7
प्रत्यक्षदर्शी जिनवरों ने धर्म (धर्मास्तिकाय), अधर्म (अधर्मास्तिकाय), आकाश (आकाशास्तिकाय), काल, पुद्गल (पुद्गलास्तिकाय), जीव (जीवास्तिकाय), यह षड्द्रव्यात्मक लोक कहा है।

4. **गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।**
भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणं।।
वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य।। -28/9, 10
गति करने में सहायक होना धर्मास्तिकाय का लक्षण है। स्थिति करने में सहायक होना अधर्मास्तिकाय का लक्षण है। सभी द्रव्यों का आधार आकाश है, उसका लक्षण है अवकाश। वर्त्तना(परिवर्तन) काल का लक्षण है। उपयोग (चेतना-व्यापार) जीव का लक्षण है, जो ज्ञान (विशेष बोध), दर्शन (सामान्य बोध) और सुख तथा दुःख से पहचाना जाता है।

5. **नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।**
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं।। -23/11
ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग, ये जीव के लक्षण हैं।

6. **सद्दऽन्धयार-उज्जोओ, पहा-छायाऽऽतवे इ वा।**
वण्ण-रस-गन्ध-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं।। -28/12

शब्द, अन्धकार, उद्योत (प्रकाश), प्रभा (कान्ति), छाया, आतप (धूप) तथा वर्ण (रंग), गन्ध, रस और स्पर्श, ये सब पुद्गल के लक्षण हैं। (शब्दादि छः पुद्गल के परिणाम या कार्य हैं और वर्णादि चार पुद्गल के गुण हैं।)

7. **एगत्तं च पुहत्तं च, संखा संठाणमेव य।**
संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं।। -28/13

एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, संस्थान (आकार), संयोग और वियोग, ये पर्यायों के लक्षण हैं। (सत् उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त माना जाता है, उसमें जो उत्पाद और व्यय रूप धर्म उत्पन्न होते हैं, उन्हें पर्याय कहते हैं।)

8. **जीवाजीवा य बन्धो य, पुण्णं पावासवो तहा।**
संवरो निज्जरा मोक्खो, सन्तेए तहिया नव।। -28/14

जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये नौ तत्त्व हैं।

9. **ना दंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरण-गुणा।**
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं।। -28/30

सम्यग्दर्शन रहित व्यक्ति को ज्ञान नहीं होता, सम्यग्ज्ञान के बिना चारित्र के गुण प्रकट नहीं होते, चारित्र गुण के बिना मोक्ष (कर्मक्षय) नहीं होता और मोक्ष के बिना निर्वाण (अचल चिदानन्द) नहीं होता।

10. **नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।**
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई।। -28/35

ज्ञान से जीव पदार्थों या तत्त्वों को जानता है, दर्शन से उन पर श्रद्धा करता है, चारित्र से नवीन कर्मों के आश्रव का निरोध करता है और तप से परिशुद्धि अर्थात् पूर्व संचित कर्मों का क्षय करता है।

उनतीसवाँ अध्ययन : सम्यक्त्व पराक्रम

अध्ययन-सार गीतिका

सम्यक्त्व के कुछ सूत्र हैं जो, वीर प्रभु ने हैं दिये,
जिनकी चाहत मुक्ति की, अनुसार उनके वे जिये।
जो पराक्रम इनमें करते, वे प्रबुद्ध हैं आतमा,
आराधना से भव्यजन, बन जायेंगे परमात्मा।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

सम्यक्त्व पराक्रम का फल (मूल गाथा- 1)

1 आयुष्मन्! सुना है मैंने, वीर प्रभु फरमाते,
सम्यक्त्व पराक्रम कैसे हो, दिशा बोध बतलाते,
अनुक्रम से भगवद् वाणी को, सुनलो और सुना-लो।

2 इसमें रुचि-प्रतीति करके, सही अर्थ को जाने,
आज्ञा से अनुपालन करके, दुर्लभ बोधि पाने,
श्रद्धा से आराधन करके, दुःख का अन्त करा-लो।

अध्यात्म सूत्र-संवेग (मूल गाथा- 2)

3 भन्ते! कृपा करो बतलाओ, क्या संवेग से मिलता?
मुक्ति पद की उत्कण्ठा से, क्या जग सुख है रुचता?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

4 श्रेष्ठ धर्म श्रद्धा से साधक, संवेग भाव में सजता,
क्लिष्ट कषाय को क्षय करके, कर्म बन्ध नहीं करता,
दर्शन आराधक बन करके, शीघ्र परम पद पा-लो।

अध्यात्म सूत्र- निर्वेद (मूल गाथा- 3)

5 भंते! कृपा करो बतलाओ, क्या निर्वेद से मिलता ?
संसार विरक्ति से प्राणी, क्या वर्जन है करता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

6 भव खेद जब जागृत होता, विषय भोग ना रमता,
आरम्भ को तज देने से वह, भवपथ का छेदन करता,
जन्म-मरण का मार्ग छोड़के, शिवपथ को अपना-लो।

अध्यात्म सूत्र- धर्म श्रद्धा (मूल गाथा- 4)

7 धर्म की श्रद्धा से भंते! क्या होता है बतलाओ ?
धर्म आचरण की अभिलाषा, क्या होती है समझाओ ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

8 धर्म की श्रद्धा से तज देता, साता-सुख आसक्ति,
अणगारी बन साधक पाता, संयोग-वियोग से मुक्ति,
दुःखों का उच्छेदन करके, निराबाध सुख पा-लो।

अध्यात्म सूत्र- गुरु-साधर्मिक शुश्रूषा (मूल गाथा- 5)

9 गुरु-साधर्मिक सेवा करके, जीव कहो क्या पाता ?
पर्युपासना करने से प्रभु! कैसे वह सरसाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

10 गुरु-साधर्मिक सेवा से वह, विनय धर्म को पाता,
भक्ति और बहुमान के द्वारा, सद्गति से जुड़ जाता,
विनय शील बन करके प्राणी, कारज सिद्ध करा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- आलोचना (मूल गाथा- 6)

11 गुरु से भूल निवेदन करके, भंते! प्राणी क्या पाता ?
गुण-दोषों का समीक्षण करके, कैसे वह सरसाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

12 आलोचन करने से प्राणी, भाव-शल्य तज देता,
कपट रहित हो जाने से वह, ऋजुता को वर लेता,
मोक्षमार्ग के विघ्न हटाने, दोष सभी प्रगटा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- निन्दना (मूल गाथा- 7)

13 अपनी निन्दा करके प्राणी, जग में क्या है पाता ?
तिरस्कार निज दोषों का, क्या परिणाम है लाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

14 दोष मुक्ति हित व्याकुल साधक, आत्मनिंदना करता,
पश्चाताप से ग्रन्थि भेदकर, क्षपक श्रेणी पर चढ़ता,
दोष शुद्धि की प्यास जगाकर, परम शान्ति को पा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- गर्हणा (मूल गाथा- 8),

15 भन्ते! बतलाओ गर्हा से, जीव प्राप्त क्या करता ?
भूल प्रकट कर अन्यों को, कैसे दोष है तजता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

16 आत्मगर्हा करने से साधक, आत्म अनादर पाता,
अशुभ योग से निवृत्त होकर, शुभ योगों में जाता,
घाती कर्मों की परिणति को, इससे क्षीण करा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- सामायिक (मूल गाथा- 9)

17 भन्ते! सामायिक साधन से, जीव यहाँ क्या पाता ?
समभावों में रहकर क्या, संचित कर्म खपाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

18 करता सामायिक साधन, सावद्य योग से विरति,
राग-द्वेष को तज देने से, शुभ योगों में परिणति,
कर्म-निर्जरा करने के हित, समता सर में नहा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- चतुर्विंशतिस्तव (मूल गाथा- 10)

19 चौबीसी के स्तवन से, जीव प्राप्त क्या करता ?
उनका गुण कीर्तन करके, किस बाधा को हरता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

20 अहोभाव से गुण संकीर्तन, मिथ्या मोह भगाता,
दर्शन की विशुद्धि होती, समकित निर्मल पाता,
हरता है दर्शन की बाधा, अर्हत् भक्ति जगा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- वन्दना (मूल गाथा- 11)

21 वन्दन करने से हे भंते! प्राणी क्या फल पाता ?
विनय भाव से गुरुजनों को, जब वह शीश नमाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

22 भाव-भक्ति से गुरुओं का, वंदन जो है करता,
नीच गोत्र का क्षय करके वह, उच्च बन्ध है करता,
जग में लोकप्रिय बन करके, भाग्योदय चमका-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- प्रतिक्रमण (मूल गाथा- 12)

23 प्रतिक्रमण करने से भंते! प्राणी को क्या मिलता ?
गफलत में जो दोष लगे तो, उनसे कैसे बचता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

24 अतिचार के सब छिद्रों को, प्रतिक्रमण है ढ़कता,
नव कर्मों का आना रुकता, शुद्ध चरण में रमता,
संयम में एकरस हो करके, शांत समाधि पा-लो।

अध्यात्म सूत्र- कायोत्सर्ग (मूल गाथा- 13)

25 काया के उत्सर्ग से भंते! कहो जीव क्या पाता ?
ममत्व त्याग करके तन का, कैसे दुःख घटाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

26 अतिचारों की शुद्धि होती, भारहीन हो रहता,
छोड़ सभी चिन्ताओं को, प्रशस्त ध्यान में रमता,
सुख पूर्वक विचरण करता है, ममता देह छुड़ा-लो।

अध्यात्म सूत्र- प्रत्याख्यान (मूल गाथा- 14)

27 प्रत्याख्यान के करने से प्रभु! कहो जीव क्या पाता ?
व्रत नियम के लेने से वो, कैसे दोष छुड़ाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

28 पदार्थों की ममता छूटे, शीतलीभूत हो रहता,
अव्रत की क्रिया नहीं लगती, व्रत नियम जब धरता,
दशविध प्रत्याख्यान को करके, भावी दोष छुड़ा-लो।

अध्यात्म सूत्र- स्तव-स्तुति-मंगल (मूल गाथा- 15)

29 स्तव-स्तुति-मंगल से, जीव यहाँ क्या पाता ?
भक्ति से गुण कीर्तन करके, कैसे लाभ कमाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

30 भावों से गुण अर्चन करके, रत्नत्रयी से सजते,
अन्तक्रिया या कल्पों के, योग्य आराधन करते,
बोधि से सम्पन्न होकर के, उच्च गति को पा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- काल प्रतिलेखना (मूल गाथा- 16)

31 कालिक प्रतिलेखन से भंते! जीव प्राप्त क्या करता ?
समय-समय पर जो भी करना, करने से क्या मिलता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

32 चौतीस अस्वाध्याय को टाळै, यही काल प्रतिलेखन,
काले कालं समायरे हो, चउकाल अन्वेषण,
ज्ञानावरणीय कर्म खपाते, प्रभु आज्ञा को निभा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- प्रायश्चित्तकरण (मूल गाथा- 17)

33 प्रायश्चित्त करने से भन्ते! जीव यहाँ क्या पाता ?
पाप विशुद्धि हो जाने से, कैसे फल को पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

34 प्रायश्चित्त से पापकर्म की, होती विशुद्धि भारी,
मार्ग विशुद्धि आचार आराधन, इसकी ही बलिहारी,
मारग-फल की शुद्धि से, मुक्ति का फल पा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- क्षमापना (मूल गाथा- 18)

35 क्षमादान से हे भन्ते! कहो जीव क्या पाता ?
क्षमादान देने-लेने से, कैसे भाव बसाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

36 क्षमादान देने-लेने से, चित्त प्रसन्नता पाता,
आत्मतुल्य है जीव जगत के, मैत्री भाव जगाता,
उससे भाव विशुद्धि पाकर, निर्भय होकर चालौ।

आध्यात्मिक सूत्र- स्वाध्याय (मूल गाथा- 19)

37 स्वाध्याय से हे भन्ते! जीवों को क्या मिलता?
श्रुत के अध्ययन करने से, क्या कर्म भार है घटता?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

38 स्वाध्याय से ज्ञानावरणी, कर्म क्षीण कर पाता,
इसकी महिमा कही न जाये, तप है श्रेष्ठ कहाता,
स्व का स्व में अध्ययन करके, आत्मरूप चमका-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- वाचना (मूल गाथा- 20)

39 सूत्र वाचना से प्राणी, जग में क्या है पाता?
श्रुत का अध्ययन करने से, तीर्थ कौन सा पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

40 सूत्र वाचना से प्राणी, श्रुत आशातन से बचता,
धर्मतीर्थ का अवलम्बन ले, महानिर्जरा करता,
श्रुत की धारा रहे चिरंतन, पढ़-लो और पढ़ा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- प्रतिपृच्छना (मूल गाथा- 21)

41 प्रतिपृच्छना से भन्ते! प्राणी को क्या मिलता ?
प्रतिप्रश्न करने से वह, क्या निर्णय है करता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

42 पृच्छा-प्रतिपृच्छा करने से, संशय सारे तजता,
सूत्र अर्थ को शुद्ध करे, तत्त्वों का निर्णय करता,
मिथ्या मोहनीय कर्म नष्ट हों, संदेह कभी ना पालौ।

आध्यात्मिक सूत्र- परिवर्तना (मूल गाथा- 22)

43 परिवर्तना से प्राणी, किस गुण को है पाता ?
सूत्र अर्थ की आवृत्ति से, कैसी लब्धि कमाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

44 सूत्र अर्थ की आवृत्ति से, पाठ सिद्ध कर पाता,
विस्मृत ना हो पाठ कभी वो, व्यंजन लब्धि पाता,
अभिनव ज्ञान बना रहता है, सूत्र अर्थ को पा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- अनुप्रेक्षा (मूल गाथा- 23)

45 अनुप्रेक्षा से हे भगवन्! प्राणी क्या फल पाता ?
सूत्र अर्थ के चिन्तन से, कौन बन्ध छुड़ाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

46 पूर्व बन्ध को शिथिल करता, अनुप्रेक्षा से साधक,
अशुभ कर्म को नहीं बांधता, बनता है आराधक,
भव- अटवी को शीघ्र पार कर, मोक्ष सुखों को पा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- धर्म कथा (मूल गाथा- 24)

47 धर्मकथा से हे भगवन्! प्राणी क्या फल पाता ?
चार तरह की धर्मकथा से, कौन कर्म कमाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

48 धर्मकथा करने से साधक, धर्म प्रभावक बनता,
भद्रभाव से शुभ कर्मों का, बन्ध भविष्य में करता,
कर्म निर्जरा इससे होती, अनुपम लाभ कमा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- श्रुत आराधना (मूल गाथा- 25)

49 श्रुत के आराधन से भंते! जीव कहो क्या पाता ?
आगम के अवगाहन से, किस रस को है पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

50 श्रुत के आराधन से प्राणी, अज्ञान नष्ट है करता,
राग-द्वेष का क्लेश न पाता, प्रशम रसों में रमता,
विशिष्ट बोध पा करके अपना, मिथ्याज्ञान मिटा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- एकाग्रमनः सन्निवेश
(मूल गाथा- 26)

51 एकचित्तता से भगवन्! प्राणी क्या फल पाता ?
शुभ का अवलम्बन लेकर के, कैसी सिद्धि पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

52 एकाग्र चित्तता होने से, चित्त निरोध है करता,
विकल्प शून्य हो करके वह, मन चंचलता हरता,
शुभ का अवलम्बन लेने का, अपना ध्येये बना-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- संयम (मूल गाथा- 27)

53 संयम को धारण करने से, प्राणी को क्या मिलता ?
मन-वच-काया के नियमन से, कैसा जीवन खिलता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

54 संयम से नूतन कर्मों का, आना है रुक जाता,
आश्रव द्वार बन्द हो जाते, यतना धर्म निभाता,
मन-वच-काया की विरति से, हिंसा को तज डालो।

आध्यात्मिक सूत्र - तप (मूल गाथा- 28)

55 तप के आराधन से भंते! प्राणी क्या है पाता ?
देह और आत्म-दमन से, किस शुद्धि को पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

56 तप से होती कर्म निर्जरा, तप मुक्ति का साधन,
संचित कर्म खपाने हेतु, करो तप आराधन,
अन्तर्मन की शुद्धि करने, तपोधर्म अपना-लो।

आध्यात्मिक सूत्र - व्यवदान (मूल गाथा- 29)

57 व्यवदान भाव से जीव यहाँ, किस गुण को है पाता ?
आत्म-विशुद्धि हो जाने से, किसका अन्त कराता ?
बोध प्राप्त करने की उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

58 व्यवदान भाव से जीव यहाँ, क्रिया रहितता पाता,
आत्म-विशुद्धि हो जाने पर, सिद्ध-बुद्ध हो जाता,
करलो अन्त सभी दुःखों का, परमशांति को पा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- सुख-शात (मूल गाथा- 30)

59 सुख-शात से हे भगवन्! कहो जीव क्या पाता ?
विषय सुखों की अनासक्ति से, कैसा कर्म मिटाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

60 विषय सुखों की अनासक्ति से, अनुकम्पा से भरता,
शोक मुक्त होकर के साधक, मोह कर्म क्षय करता,
निःस्पृह होकर विषय सुखों से, शोक नष्ट कर डालो।

आध्यात्मिक सूत्र- अप्रतिबद्धता (मूल गाथा- 31)

61 अप्रतिबद्ध भाव से भंते! जीव यहाँ क्या पाता ?
मन की अनासक्ति से कैसी, तन्मयता को पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

62 अप्रतिबद्ध भाव से साधक, निःसंगता को पाता,
आत्मनिष्ठ बन करके वह, एक चित्त हो जाता,
बन्ध रहित विचरण करने को, ममता भाव छुड़ा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- विविक्त शय्यासन (मूल गाथा- 32)

63 विविक्त शय्यासन से भन्ते! जीव यहाँ क्या पाता ?
एकान्तवास के सेवन से, किसमें रत हो जाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

64 विविक्त शय्यासन से प्राणी, चारित्र की रक्षा करता,
शुद्ध सात्विक आहारी बन, अनासक्ति को वरता,
मोक्ष साधना में रत रह कर, कर्म काट सब डालो।

आध्यात्मिक सूत्र- विनिवर्तना (मूल गाथा- 33)

65 विनिवर्तना से प्राणी, किस गुण को है पाता ?
विषय वासना से निवृत्त हो, किसे पार कर पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

66 पाप कर्म के बन्ध हेतु से, निवृत्त वह हो जाता,
संवर और निर्जरा करके, संसार पार कर पाता,
पाप कर्म के कारण तज कर, कर्म क्षीण कर डालो।

आध्यात्मिक सूत्र- सम्भोग प्रत्याख्यान (मूल गाथा- 34)

67 सम्भोग प्रत्याख्यान से प्राणी, जीव यहाँ क्या पाता ?
मंडली-भोज के त्याग से कैसी, सुख शय्या को पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

68 संभोग के पचक्खाण से, सारा आलम्बन मिटता,
निरावलम्बी बनके साधक, स्व-संतोष है करता,
परलाभों की तजो चाहना, सुख शय्या को पा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- उपधि प्रत्याख्यान (मूल गाथा- 35)

69 उपधि प्रत्याख्यान से प्राणी, जीव यहाँ क्या पाता ?
उपकरणों को तज देने से, किससे मुक्ति पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

70 उपधि प्रत्याख्यान से प्राणी, निर्विघ्न भाव में रहता,
आकांक्षा से मुक्त बना, संक्लेश नहीं है धरता,
उपधि तज कर स्वाध्याय में, विघ्न दूर कर डालो।

आध्यात्मिक सूत्र- आहार प्रत्याख्यान (मूल गाथा- 36)

71 आहार के प्रत्याख्यान से भन्ते! कहो जीव क्या पाता ?
आहार त्याग कर देने से, किससे मुक्ति पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

72 आहार प्रत्याख्यान से साधक, जीवन इच्छा तजता,
आहार बिना वह जीवन में, संक्लेश नहीं है करता,
अनैषणीय आहार त्याग कर, परीषह जय कर डालो।

आध्यात्मिक सूत्र- कषाय प्रत्याख्यान (मूल गाथा- 37)

73 कषाय के प्रत्याख्यान से प्राणी, किस गुण को है पाता ?
क्रोध, मान मायादि तज कर, किसमें स्थिर हो जाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

74 कषाय त्याग करने से प्राणी, वीतराग बन जाता,
हर्ष, शोक, संयोग-वियोग में, नही उद्‌वेग है लाता,
समभावों में स्थिर रहने को, कषाय संग छुड़ा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- योग प्रत्याख्यान (मूल गाथा- 38)

75 योग के प्रत्याख्यान से प्राणी, क्या जग में है पाता ?
योग निरोध करने से किसका, प्राणी क्षय कर पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

76 योग प्रवृत्ति तज देने से, अयोगी भाव को पाता,
योगरहित होकर के वो, बन्ध हेतु मिटाता,
नव कर्मों का बन्ध नहीं हो, संचित कर्म खपा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- शरीर प्रत्याख्यान (मूल गाथा- 39)

77 देह त्याग करने से प्राणी, इस जग में क्या पाता ?
पाँच शरीरों को तजकर, किस सुख को है पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

78 देह त्याग करने से प्राणी, सिद्धों के गुण पाये,
लोक के अग्रिम भाग में जाकर, परम सुखी हो जाये,
जन्म-मरण का बन्धन तज के,शाश्वत सुख को पा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- सहाय प्रत्याख्यान (मूल गाथा- 40)

79 सहाय प्रत्याख्यान से भंते! प्राणी क्या है पाता ?
परजन का सहकार त्याग कर, आखिर में क्या पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

80 सहाय नहीं लेने से प्राणी, एकत्व भाव में रमता,
कलह रहित हो जाता है, अल्प कषायी बनता,
संयम संवर में वृद्धि कर, चित्त समाधि पा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- भक्त प्रत्याख्यान (मूल गाथा- 41)

81 भक्त प्रत्याख्यान से भंते! कहो जीव क्या पाता ?
संलेखन का आश्रय लेकर, किसका अन्त कराता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

82 भक्त प्रत्याख्यान से प्राणी, भव निरोध है करता,
आहार ग्रहण की अनासक्ति से, जन्म-मरण है हरता,
संलेखन व्रत धारण करके, भव का चक्र मिटा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- सद्भाव प्रत्याख्यान
(मूल गाथा- 42)

83 सद्भाव प्रत्याख्यान से भंते! जीव यहाँ क्या तजता ?
सर्व क्रिया-योगों को तजकर, क्या त्याग कुछ बचता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

84 सर्व क्रिया-योगों को तजकर, अनिवृत्ति को पाता,
अघाती कर्मों का क्षय करके, सिद्ध-मुक्त हो जाता,
अन्तिम प्रत्याख्यान पाल कर, पुनर्जन्म को टाळौ।

आध्यात्मिक सूत्र- प्रतिरूपता (मूल गाथा- 43)

85 प्रतिरूपता से प्राणी, किस गुण को है पाता ?
जिनकल्पी सम निर्वाहन से, आखिर में क्या पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

86 जिनकल्पी सम निर्वाहन से, प्राणी लघुता पाता,
प्रमाद रहित होकर के साधक, समकित शुद्धि लाता,
अन्तर बाहर एक रूप हो, चारित्र शुद्ध करा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- वैयावृत्त्य (मूल गाथा- 44)

87 वैयावृत्त्य से हे भंते! जीव यहाँ क्या पाता ?
साधु सन्तों की सेवायें, कैसा तप कहलाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

88 वैयावृत्त्य है चरण सत्तरी, भाव सहित जो धारे,
गोत्र तीर्थंकर बांधे वो, पहुँचे भव के किनारे,
महानिर्जरा करने के हित, आभ्यन्तर तप अपना-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- सर्वगुण सम्पन्नता (मूल गाथा- 45)

89 सब गुण से सम्पन्न जीव प्रभु! कहो प्राप्त क्या करता ?
रत्नत्रयी परिपूर्ण खिले तो, किसका अन्त है करता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

90 सब गुण से सम्पन्न जीव, अपुनरावृत्ति पाता,
अविचल मुक्ति पा करके वह, सारे दुःख मिटाता,
दुःख के कारण नहीं मुक्ति में, निजगुण को चमका-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- वीतरागता (मूल गाथा- 46)

91 वीतरागता से भगवन्! कहो जीव क्या पाता ?
रागद्वेष रहित होकर के, कैसी उपरति पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

92 वीतरागता लक्ष्य साधकर, करता बन्धन मुक्ति,
प्रियाप्रिय इन्द्रिय विषयों में, आती इससे विरक्ति,
राग मूल है सब बन्धन का, इसको दूर हटा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- क्षांति (मूल गाथा- 47)

93 क्षांति गुण से हे भगवन्! कहो जीव क्या पाता ?
सहन शक्ति धारण करने से, कैसी क्षमता पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

94 खंति धर्म है प्रथम यति का, धीरज रखके सहना,
सहने से समता बढ़ती है, परीषह जय फिर करना,
हँसते सहना, सहते हँसना, प्रभु पथ को अपना-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- मुक्ति (मूल गाथा- 48)

95 मुक्ति का गुण आने से, जीव यहाँ क्या पाता ?
निर्लोभी बन जाने से वह, कौन भाव नहीं लाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

96 निर्लोभी बन करके प्राणी, अकिंचनता को पाता,
द्रव्यों का परिग्रह तजने से, याचक भाव नहीं आता,
द्रव्य रहित हो करके प्राणी, चिन्ता सभी छुड़ा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- आर्जवता (मूल गाथा- 49)

97 आर्जवता को धारण करके, जीव यहाँ क्या पाता ?
निष्कपट सरल होकर क्या, आराधक बन जाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

98 आर्जवता धारण करने से, काय सरलता पाता,
भाव सरलता पाकर के फिर, अवंचक बन जाता,
धर्म आराधक बन जाता है, ऋजुता मन में बसा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- मृदुता (मूल गाथा- 50)

99 मृदुता को धारण करके, जीव यहाँ क्या पाता ?
विनम्र स्वभावी बन करके वह, किसका मद है तजता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

100 मृदुता को धारण करने से, मान रहित हो नमता,
मृदु-मार्दव से युत होकर के, अष्ट मदों को तजता,
मान परीषह जय करने को, मार्दव भाव भरा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- भाव सत्य (मूल गाथा- 51)

101 भाव सत्य से जीव कहो, किस गुण को है पाता ?
अन्तर की सच्चाई से, परलोक में क्या है पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

102 भाव सत्य से जीव यहाँ, भाव विशुद्धि पाता,
अर्हत् भाषित धर्माराधन, में उद्यत हो जाता,
धर्म मिले जन्मान्तर में भी, अन्तर शुद्ध बना-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- करण सत्य (मूल गाथा- 52)

103 करण सत्य से हे भन्ते! जीव यहाँ क्या पाता ?
काम करे सच्चाई से तो, कैसा वह हो जाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

104 करण सत्य से सत्य क्रिया, करने की क्षमता पाता,
जैसा कहता वैसा करता, यथाकार कहलाता,
कथनी-करनी में नहीं अन्तर, करण सत्य अपना-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- योग सत्य (मूल गाथा- 53)

105 योग सत्य से हे भगवन्! प्राणी क्या है पाता ?
मन-वच-काया की सच्चाई, होने से क्या मिलता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

106 योग सत्य से प्राणी जग में, योग विशुद्धि करता,
मन-वच-काया के योगों से, सत्य तथ्य है मिलता,
पूर्ण सत्य को पाने हेतु, सत्य त्रिवेणी नहा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- मनोगुप्ति (मूल गाथा- 54)

107 मनोगुप्तता से हे भन्ते! जीव यहाँ क्या पाता ?
अकुशल मन को जो रोके, क्या आराधक हो जाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

108 मनोगुप्तता से प्राणी, एकाग्रभाव में रहता,
अशुभ विकल्पों से हटकर, मन की रक्षा करता,
संयम आराधक बनने को, मनोगुप्ति को पालौ।

आध्यात्मिक सूत्र- वचन गुप्ति (मूल गाथा- 55)

109 वचन गुप्ति से हे भगवन्! जीव यहाँ क्या पाता ?
अशुभ वचन से निवृत्त होकर, ध्यान युक्त हो पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

110 वचन-गुप्ति का सच्चा साधक, निर्विकारता पाये,
वाचा-संयम रखने से, ध्यान युक्त हो जाये,
क्लेशादि से बचना हो तो, वचन गुप्ति को पालौ।

आध्यात्मिक सूत्र- काय गुप्ति (मूल गाथा- 56)

111 काय गुप्ति से हे भगवन्! जीव यहाँ क्या पाता ?
अशुभ चेष्टाओं को तजकर, पाप बन्द कर पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

112 काय गुप्तता धारण करके, संवर युक्त हो जाता,
संवर से फिर कायगुप्तता, आश्रव बन्द कराता,
अशुभ छोड़कर शुभ को करने, काय गुप्ति को पालौ।

आध्यात्मिक सूत्र- मन समाधारणा (मूल गाथा- 57)

113 मन समाधारण से भन्ते! जीव यहाँ क्या पाता ?
उचित नियोजन करके मन का, क्या क्षय है कर पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

114 मन समाधारण से प्राणी, एकाग्रभाव में रमता,
ज्ञान के पर्यायों को पाकर, समकित शुद्धि करता,
श्रुतोपासना में मन धर कर, मिथ्या क्षय कर डालो।

आध्यात्मिक सूत्र- वचन समाधारणा (मूल गाथा- 58)

115 वचन समाधारण से भन्ते! जीव यहाँ क्या पाता ?
वाणी से स्वाध्याय में रहकर, सुलभ बोधि को पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

116 वचन समाधारण करने से, सुनलो क्या है मिलता,
वाणी विषयभूत दर्शन की, जीव विशुद्धि करता,
सुलभ बोधिता पाने के हित, स्व में रमण करा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- काय समाधारणा (मूल गाथा- 59)

117 काय समाधारण से भन्ते! जीव यहाँ क्या पाता ?
शुभ योगों में काया रखके, किस गुण को है पाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

118 संयम में काया रखकर, चारित्र शुद्धि है पाता,
यथाख्यात चारित्र प्राप्त कर, वीतराग पद पाता,
अन्त करो बाकी कर्मों का, सिद्धगति को पा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- ज्ञान सम्पन्नता (मूल गाथा- 60)

119 ज्ञान सहितता से हे भन्ते! जीव यहाँ क्या पाता ?
श्रुत से सम्पन्न होकर वह, प्रामाणिक बन जाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

120 ज्ञानवान सुसाधक बनता, सर्वभाव विज्ञाता,
चतुर्गति संसार चक्र में, नष्ट नहीं हो पाता,
स्व-पर मत का ज्ञाता बनकर, प्रामाणिक बन चालौ।

आध्यात्मिक सूत्र- दर्शन सम्पन्नता (मूल गाथा- 61)

121 दर्शन युक्तता से प्राणी, जीव यहाँ क्या पाता ?
सम्यक् दर्शन की प्राप्ति से, किस गुण को अपनाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

122 भव का मूल मिथ्यात्व कहा है, इससे ही भव-धारण,
दर्शन संपन्नता का फल है, भव मिथ्यात्व निवारण,
उत्तम दर्शन ज्ञान से भावित, होकर सुख से चालौ।

आध्यात्मिक सूत्र- चारित्र सम्पन्नता (मूल गाथा- 62)

123 चारित्र पूर्णता से भन्ते! जीव यहाँ क्या पाता ?
पूर्ण चारित्र को पाकर क्या, मोक्ष धाम चढ़ जाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

124 चार घातिया कर्म खपाता, चारित्र संपन्न साधक,
अचल- अकम्प शैल की भांति, बन जाता आराधक,
सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो सारे, दुःख का अन्त करा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- पंचेन्द्रिय निग्रह
(मूल गाथाएँ- 63 से 67)

125 पंच इन्द्रियों के निग्रह से, जीव यहाँ क्या पाता ?
जुड़े न मन उनके संग में, जीवन तब सरसाता ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

126 पंच इन्द्रियों के निग्रह से, राग-द्वेष है टलता,
नये कर्म का बन्ध नहीं हो, संचित को क्षय करता,
समभावों से मन को भर कर, कर्म-बन्ध को टाळौ।

आध्यात्मिक सूत्र- कषाय विजय
(मूल गाथाएँ- 68 से 71)

127 कषाय विजय करने से भन्ते! जीव यहाँ क्या पाते ?
क्रोध-मान-माया व लोभ, ये चार कषाय कहाते ?
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

128 क्रोध विजय से क्षमाभाव और, मान विजय से मृदुता,
लोभ विजय से हो संतुष्टि, माया जय से ऋजुता,
कषाय-वेदनीय कर्म न बांधे, संचित कर्म खपा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- राग-द्वेष-मिथ्यात्व दर्शन विजय

(मूल गाथा- 72)

129 राग-द्वेष मिथ्यात्व विजेता, भन्ते! क्या फल पाए ?
अंतिम पृच्छा शेष रही है, समाधान फरमाएँ,
बोध प्राप्त करने को उत्सुक, अपना शीश नमा-लो।

130 पृच्छा सुन्दर है आयुष्मन्! समाधान अब सुनना,
प्रथम मोह फिर ज्ञान-दरश संग, अंतराय क्षय करना,
लोक-अलोक प्रकाशक केवल, दर्शन-ज्ञान को पा-लो।

आध्यात्मिक सूत्र- योग निरोध शैलेशी अवस्था और सिद्धावस्था

(मूल गाथाएँ- 73 एवं 74)

131 यथाविध इन सब बोलों का, आराधन जो करता,
अंतिम अन्तर्मुहूर्त के रहते, शुक्लध्यान चित्त धरता,
योग निरोध अरु कर्म खपाके, शुद्ध चेतना पा-लो।

132 शुद्ध चेतन को पुद्गल का फिर, संग रास नहीं आता,
एक समय में अफुसमाण से, लोक शिखर पे जाता,
सिद्ध-बुद्ध होकर के प्राणी, शाश्वत आनन्द पा-लो।

133 धीर-वीर-महावीर की वाणी, मन भावन अति सुन्दर,
करो-करो पुरुषार्थ भविजन, बनना वीर अनुत्तर,
सेवं भंते! सेवं भंते! कहकर कदम बढ़ा-लो।

सूक्तियाँ

1. **सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ।** -29/9
सामायिक से जीव सावद्ययोगों से विरति को प्राप्त होता है।

2. **वंदणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ, उच्चागोयं कम्मं निंबधइ।** -29/11
वंदना से जीव नीच गोत्रकर्म का क्षय कर उच्च गोत्रकर्म का बन्ध करता है।

3. **पडिक्कमणेणं वयछिद्दाइं पिहेइ।** -29/12
प्रतिक्रमण से जीव स्वीकृत व्रतों के छिद्रों को बन्द कर देता है।

4. **पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुम्भइ।** -29/14
प्रत्याख्यान से जीव कर्म बन्ध के हेतु आश्रव द्वारों को बन्द कर देता है।

5. **थवथुइमंगलेणं नाण-दंसण-चरित्त बोहिलाभं जणयइ।** -29/15
स्तव-स्तुति-मंगल से जीव को ज्ञान-दर्शन-चारित्र स्वरूप बोधिलाभ प्राप्त होता है।

6. **खमावणयाए णं पल्हायणभावं जणयइ।** -29/18
क्षमापना से जीव को प्रह्लाद भावना अर्थात् चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

7. **सज्झाएणं नाणवरणिज्जं कम्मं खवेइ।** -29/19
स्वाध्याय से जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है।

8. **संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ।** -29/27
संयम से जीव अनाश्रवत्व अर्थात् आते हुए कर्मों का निरोध करता है।

9. **कसाय-पच्चक्खाणेणं वीयराग-भावं जणयइ।** -29/37
कषाय के प्रत्याख्यान से जीव वीतराग भाव प्राप्त करता है।

10. **वेयावच्चेणं तित्थयरनामगोत्तं कम्मं निबन्धइ।** -29/44
वैयावृत्त्य से जीव तीर्थंकर-नाम-गोत्र का बन्ध करता है।

11. **नाणसंपन्नयाए णं जीवे सव्वभावाहिगमं जणयइ।** -29/60
ज्ञान सम्पन्नता से जीव सर्वभावों का बोध प्राप्त करता है।

12. **दंसणसम्पन्नयाए णं भव-मिच्छत्त-छेयणं करेइ।** -29/61
दर्शन सम्पन्नता से जीव संसार के हेतुभूत मिथ्यात्व का छेदन करता है।

13. **चरित्तसंपन्नयाए णं सेलेसीभावं जणयइ।** -29/62
चारित्र सम्पन्नता से जीव शैलेशी भाव को प्राप्त कर लेता है।

14. **कोहविजएणं खन्तिं जणयइ।** -29/68
क्रोध पर विजय प्राप्त करने से जीव क्षमाभाव को प्राप्त करता है।

15. **माणविजएणं मद्दवं जणइ।** -29/69
मान विजय से जीव मृदुता को प्राप्त करता है।

16. **मायाविजएणं उज्जुभावं जणयइ।** -29/70
माया पर विजय प्राप्त करने से जीव सरलता को प्राप्त करता है।

17. **लोभविजएणं संतोसं जणयइ।** -29/71
लोभ विजय से जीव संतोष भाव को प्राप्त करता है।

तीसवाँ अध्ययन : तपोमार्ग-गति

अध्ययन-सार गीतिका

देह के निज आतमा से, संग को पहिचानना,
करने विलग उस संग को, तप-मार्ग को है जानना।
देह आसक्ति मिटाने, बाह्यतप को पालना,
निज गुणों की प्राप्ति हित, अन्तर के तप को साधना।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

तप द्वारा कर्मक्षय (मूल गाथाएँ- 1 से 6)

1 राग-द्वेष से संचित होते, पापकर्म दुःख भारी,
कर्मक्षीण हो जाते तप से, तप की महिमा न्यारी,
तप है मोक्षमार्ग अवलंबन, इसका ज्ञान करा-लो।

2 हिंसादि पापों से रक्षण, पंच समिति पालन,
त्रिगुप्ति और शल्य हीन, गर्व रहित आराधन,
पापों का आश्रव रुकता है, तप की राह सम्भालो।

3 जल रहित करने को सर, द्वार बन्द हो पहले,
संचित नीर सुखा करके फिर, जल विहीन तब करले,
वैसे ही सब पाप कर्म को, रोको और सुखा-लो।

तप के भेद-प्रभेद (मूल गाथाएँ- 7 से 37)

4 तप के भेद कहे दो प्रभु ने, बाह्य और आभ्यन्तर,
छः छः भेद कहे दोनों के, आतम हित में शुभकर,
तप के भेद-प्रभेद समझ कर, कर्म भस्म कर डालो।

5 अनशन और ऊनोदरी तप के, विविध भेद बतलाये,
आगम गाथाओं को पढ़कर, अपना ज्ञान बढ़ायें,
विधि युक्त तप निष्पादन कर, कर्म का संग छुड़ा-लो।

6 भिक्षाचर्या भी एक तप है, अष्ट विधि बतलाई,
सप्त एषणा में हो सजगता, अभिग्रह विधि सिखाई,
उच्च नीच मध्यम कुल में जा, अकल्प्य पिंड को टाळौ।

7 रस-परित्याग तपस्या गहरी, काम विकार नहीं आता,
मुख्य प्रयोजन स्वाद विजय है, आसक्ति को घटाता,
नीरस भोज से संयम सधता, नित्य नियम अपना-लो।

8 काय-क्लेश तप कहा प्रभु ने, तन की आसक्ति तजना,
प्रतिसंलीनता तप धारण कर, अशुभ प्रवृत्ति से बचना,
तप का मर्म समझ कर गहरा, तप का रंग लगा-लो।

9 आभ्यांतर तप के उपक्रम में, प्रायश्चित्त तप पहला,
दशविध दोष शुद्धि होती है, मन हो जाता उजला,
प्रमादजन्य दोषों को हर कर, आत्म विशुद्धि पा-लो।

10 दूजे विनय तप को जाने, गुरु का आदर करना,
हाथ जोड़ आसन देना और, सेवा भक्ति करना,
पूज्यों के प्रति योग्य रीति से, नम्र भाव अपना-लो।

11 वैयावृत्त्य भी तप है ऊँचा, प्रभु ने है बतलाया,
यथाशक्ति दश विध सेवा का, उत्तम पाठ सिखाया,
तन पाने को सार यही है, मन में इसे बसा-लो।

12 स्वाध्याय के पाँच भेद हैं, शास्त्र वाचना करना,
पढ़े पाठ को दुहराना फिर, अनुप्रेक्षा चित्त धरना,
धर्मकथा है भेद पाँचवा, स्व का भाव जगा-लो।

13 आर्त्त रौद्र ध्यान को तज के, धर्मशुक्ल को ध्याये,
क्षमा, मुक्ति, मृदुता ऋजुता का, आलंबन ही पाये,
मिथ्यामल को दूर करे यह, शुद्ध स्वरूप को पा-लो।

14 कायोत्सर्ग अंतिम तप जिसमें, तन की ममता तजना,
हर चर्या में आत्मज्ञान का, लक्ष्य सदा ही रखना,
भेद ज्ञान अनुभूति करके, पर का संग छुड़ा-लो।

सूक्तियाँ

1. **एवं तु संजयस्सावि, पावकम्मनिरासवे।**
   भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ।।। -30/6
   पापकर्मों के आश्रव को रोकने पर संयमी के करोड़ों भवों के संचित कर्म तपस्या से क्षीण हो जाते हैं।

2. **अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।**
   कायकिलेसो संलीणया य, बज्झो तवो होइ।। -30/8
   अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, कायक्लेश और प्रतिसंलीनता, ये छः बाह्य तप होते हैं।

3. **पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।**
   झाणं च विउस्सग्गो, ऐसो अब्भिन्तरो तवो।। -30/30
   प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग, ये छः आभ्यन्तर तप हैं।

इकत्तीसवाँ अध्ययन : चरण विधि

अध्ययन-सार गीतिका

संयम-धर्म की पालना, चारित्र का आधार है,
परित्याग दूषण से ही होता, आत्म का उद्धार है।
भिक्षु के गुण धार करके, आत्म की रक्षा करे,
चरणविधि को पाल करके, जीव भवसागर तिरे।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

चारित्र-विधि का महत्त्व (मूल गाथा- 1)

1 चरण विधि बतलाई प्रभु ने, जीवों को सुखदाई,
पालन करके तिरे अनन्ते, दुःख से मुक्ति पाई,
श्रद्धा पूर्वक करें आचरण, ऐसी शक्ति जगा-लो।

चरणविधि का स्वरूप (मूल गाथाएँ- 2 से 21)

2 असंयम का वर्जन करना, संयम में पग धरना,
राग-द्वेष है पाप प्रवर्त्तक, इनसे सदा ही बचना,
चरण विधि का पालन करके, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

3 गौरव, दण्ड, शल्य तीनों ही, जो साधक है तजता,
देव, मनुज, तिर्यंच कष्ट को, जो भिक्षु है सहता,
समभावों में रहकर भिक्षु, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

4 जो साधक विकथा नहीं करता, चार कषायों से टलता,
आर्त्त, रौद्र और संज्ञाओं का, अपवर्जन है करता,
अशुभ भाव को तज कर भिक्षु, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

5 पंच-महाव्रत, समिति पालन, इन्द्रिय निग्रह करना,
वर्जन करने पाँच क्रिया का, यत्न नित्य ही रखना,
निर्मल मन से व्रत पालन कर, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

6 छह काया, छह लेश्याओं में, और आहार ग्रहण में,
अशुभ भाव के परिहरण में, शुभ भावों के वरण में,
भिक्षु यतना रखकर इनमें, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

7 सप्त एषणा और प्रतिमा में, यतना जो है रखता,
विचलित ना हो सप्त भयों से, जग से जो नहीं डरता,
निर्भय होकर विचरण करके, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

8 तज कर अष्ट मदों को करता, ब्रह्म गुप्ति नौ पालन,
दशविध श्रमण धर्म अपनाता, दस पापों का भंजन,
विधि-निषेध में यतना रखकर, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

9 एकादश श्रावक की प्रतिमा, द्वादश प्रतिमा भिक्षु,
इनका यत्न करे दृढ़ता से, खोल ज्ञान के चक्षु,
श्रद्धा से आचार पाल कर, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

10 उपयोग रहे तेरह क्रिया में, चौदह जीवों का रक्षण,
परमाधार्मिक पर्यायों के, भावों का हो उत्सर्जन,
तज कर हेतु पाप कर्म के, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

11 गाथा सोलह 'सूयगड़ांग' की, और सत्रह असंयम,
विधि-निषेध के पालन में, यतना रखे हरदम,
संयम में रत रह कर भिक्षु, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

12 अष्टादश अब्रह्मचर्य से, विरत रहे भिक्षु उनसे,
'ज्ञाता' के उन्नीस अध्ययन, बोध जगाले उनसे,
बीस असमाधि से निवृत्त हो, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

13 तजे सबल इक्कीस दोष, बाईस परीषह सहना,
'सूयगड़ांग' के तेईस अध्ययन, यतना से पालन करना,
अनुसरण कर चौबीसी का, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

14 पच्चीस भाव महाव्रतों के, संयम रक्षा करने,
छब्बीस सूत्रत्रयी उद्देशक, चरण विधि में सजने,
सम्यक् इनका पालन करके, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

15 सत्ताईस अणगार गुणों में, अट्ठाईस आचारम्,
आचार धर्म का पालन करने, दृढ़ता रहे विचारम्,
अनाचार से सदा विरत रह, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

16 उन पाप श्रुतों से दूर रहे, जो उनतीस हैं बतलाये,
महामोहनीय कर्मबन्ध के, तीस जो कारण कहलाये,
अपवर्जन करके इन सबका, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

17 सिद्धों के इक्कतीस गुणों से, अन्तर्मन को जगा-ले,
प्रवृत्ति हों बत्तीस योग में, तेतीस आशातन टाळै,
विनय भक्ति कर गुरुजनों की, जग का बन्ध छुड़ा-लो।

18 इनमें जो श्रम करता भिक्षु, और उपयोग है रखता,
पालन चरण विधि का करके, अशुभ भाव से बचता,
अनुपालन कर उपादेय का, सिद्धि का सुख पा-लो।

सूक्तियाँ

1. **असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं।** -31/2

   साधक को असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति करनी चाहिए।

2. **रागद्दोसे य दो पावे, पावकम्मपवत्तणे।** -31/3

   राग और द्वेष, ये दो पापकर्मों के प्रवर्त्तक होने से पापरूप हैं।

बत्तीसवाँ अध्ययन : प्रमाद स्थान

अध्ययन-सार गीतिका

संयम की यात्रा के लिए हैं, जो मिले साधन यहाँ,
अच्छे बुरे के ज्ञान से, उपयोग करने का कहा।
प्रमाद कंटक है बड़ा, इस साधना के मार्ग में,
ज्ञान के उद्योत में ही, सुख मिलेगा त्याग में।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

सर्व दुःखमुक्ति के उपाय का कथन (मूल गाथा- 1)

1 काल अनादि के दुःखों से, पाना हो यदि मुक्ति,
आत्महितार्थ एकचित्त हो, सुनलो अब वो युक्ति,
छोड़ प्रमाद जगे आतमहित, वो संकल्प जगा-लो।

सर्व दुःख मुक्ति एवं एकान्तिक सुख प्राप्ति का उपाय
(मूल गाथाएँ- 2 से 5)

2 सम्पूर्ण ज्ञान प्रकाशन हो, अज्ञान मोह का वर्जन,
नष्ट हुए यदि राग द्वेष तो, मिलता मोक्ष निकेतन,
अनन्त सुखों को पाने के हित, रत्नत्रयी को पालौ।

,

3 गुरुजन और वृद्ध की सेवा, दूरी अज्ञानी से,
स्वाध्याय एकान्तवास में, सूत्रों के चिंतन से,
साधन हैं ये मोक्ष मार्ग के, धैर्यवृत्ति अपना-लो।

4 बोध प्राप्ति का अभिलाषी, एषणीय आहार करे,
तत्त्वार्थी का संग करे, निष्पाप जगह में ठहरे,
मिले संग नहीं गुणीजनों का, एक अकेला चालौ।

दुःख की परम्परागत उत्पत्ति (मूल गाथाएँ- 6 से 8)

5 तृष्णा से है मोह उपजता, द्वेष मोह का साथी,
नष्ट हुई यदि तृष्णा तो, निर्लोभवृत्ति है आती,
राग-द्वेष है बीज कर्म के, बीज नष्ट कर डालो।

6 कर्म मूल है जन्म-मरण का, दुःख ही जन्म मरण है,
दग्ध हुए जब कर्म बीज तो, दुःख का उन्मूलन है,
तृष्णा त्याग अकिंचन बन, कर्मों का भार हटा-लो।

राग-द्वेष-मोह उन्मूलन के उपाय (मूल गाथाएँ 9 से 18)

7 राग-द्वेष का मूल मिटाने, जानो क्रम से युक्ति,
रस सेवन से बढ़ जाती, काम-भोग आसक्ति,
अतिमात्रा में तज के सेवन, उन्मादकता टाळौ।

8 पवन संग या वन की अग्नि, शांत नहीं हो पाती,
अतिभोजी की कामाग्नि भी, तृप्त नहीं हो पाती,
अल्पभोज साधक के हित में, सम्यक् अशन करा-लो।

9 एकान्त बस्ती और आसन से, नियमबद्ध जो होता,
मितभोजी उस जितेन्द्रिय को, राग कभी न भिगोता,
रोग देह को करे न पीड़ित, ऐसी औषध खा-लो।

10 अच्छा नहीं मूषक का रहना, बिल्ली की बस्ती में,
उचित नहीं साधु का रहना, नारी की बस्ती में,
नारी रूप, अंग अवलोकन, मन से सदा निकालो।

11 ब्रह्मचर्य में जो भी रत है, हितकारी नहीं उनको,
चाह और चिन्तन में नारी, कभी न उनमें अटको,
सम्यक् धर्म साधना के हित, सभी निमित्त को टाळौ।

12 तीन गुप्ति के धारक मुनि को, विचलित ना कर पाती,
सुन्दर सज्जित इन्द्रपरि भी, आये चाहे हो इठलाती,
तदपि विविक्त-वास है हितकर, प्रभु आज्ञा को पालौ।

13 विजय कठिन है अज्ञानी को, नारी का सम्मोहन,
भवभीरु मोक्षाकांक्षी को, ऐसी नहीं है अड़चन,
धर्मनिष्ठ त्यागे नारी संग, ऐसा ज्ञान जगा-लो।

14 जीती यदि नारी आसक्ति, पूर्ण रूप से साधक,
कर्म मैल हटाने में फिर, बने न कोई बाधक,
शेष कर्म तो नदियाँ है बस, महासागर ये तिरा-लो।

काम-भोग दुःखों के हेतु (मूल गाथाएँ- 19 एवं 20)

15 सुस्वादु किम्पाक फलों का, प्रतिफल है दुःखदाई,
वैसे कामगुणों का सेवन, देता है अकुलाई,
देवों को भी दुःख है इनसे, इनका संग छुड़ा-लो।

मनोज्ञ-अमनोज्ञ 'रूपों' में समभाव रखना
(मूल गाथाएँ- 21 से 34)

16 साधक यदि समाधि चाहे, धारण करले समता,
अनचाहे पर द्वेष करे ना, प्रिय पर करे न ममता,
इन्द्रिय विषयों में सम रहके, आकुल चित्त सम्भालो।

17 चक्षु ग्राह्य विषय 'रूप' है, राग-द्वेष का कारण,
प्रियाप्रिय में सम रहना है, वीतरागता लक्षण,
रति-अरति इस पर तज करके, मन का द्वन्द्व मिटा-लो।

18 प्रिय में जो आसक्ति रखता, रागातुर कहलाता,
कामी पंतगा दीप शिखा का, अकाल मरण है पाता,
रूप-रंग में लिप्सा छोड़ो, अकाल अन्त को टाळौ।

19 अप्रिय रूप देखकर के जो, द्वेष-भाव है रखता,
वैर-विरोध की गाँठ बाँध कर, मनोव्यथा से जलता,
रूप को दोष नहीं दो इसमें, समता भाव धरा-लो।

20 रूप मनोहर लख के जो भी, अनुरक्ति है करता,
अपरूपी को देखके मन में, मत्सर भाव में जलता,
दुःख पाते अज्ञानी ऐसे, विरति भाव अपना-लो।

21 मनोज्ञ रूप की अभिलाषा का, अनुसरण जो करता,
निज का स्वारथ पूरा करने, जीव की हिंसा करता,
क्लेशयुक्त अज्ञानी जन अब, ऐसी आश मिटा-लो।

22 सुन्दर रूप-रंग से जो भी, अनुराग है रखता,
मोह-भाव के कारण उसका, अर्जन-रक्षण करता,
मिले न तृप्ति भोग काल में, ममता-मोह छुड़ा-लो।

23 रूप-भोग में रमने वाला, संतुष्टि नहीं पाता,
आकुल-व्याकुल ऐसा लोभी, चौर्य कर्म अपनाता,
असंतोषी दुःखी रहेगा, क्षुधा-दोष को टाळौ।

24 तृष्णा से अभिभूत हुआ वो, वस्तु अदत्त चुराता,
झूठ- कपट बढ़ते पर दुःख का, अन्त नहीं है आता,
तृष्णा दुःख की खान है जानो, इसको दूर भगा-लो।

25 झूठ बोलते आगे-पीछे, दुःख ही दुःख है पाता,
रूप-अतृप्त दुःखी होकर, शरणहीन हो जाता,
दुःखद अंत है असत् बोल का, सत्य वचन अपना-लो।

26 सुन्दर काया की आसक्ति, कोई सुख ना देती,
जिसको पाने दुःख उठाते, भोगों में दुःख देती,
सौख्य नहीं मिलता भोगों में, भोग का रोग मिटा-लो।

27 द्वेष 'रूप' से जो है रखता, वह भी दुःख ही पाता,
कर्मों का बन्धन करके वो, उदय काल पछताता,
द्वेष-भाव सारे तज करके, दुःख के हेतु मिटा-लो।

28 रूप विरक्ति से ही मानव, शोक मुक्त हो चलता,
जल में शतदल की भांति वो, भवदुःख में ना रहता,
राग-द्वेष ना करो 'रूप' से, दुःख परिपाटी टाळौ।

मनोज्ञ-अमनोज्ञ 'शब्दों' में समभाव रखना

(मूल गाथाएँ- 35 से 47)

29 जैसा कहा 'रूप' विषय में, वैसे अन्य को जानो,
शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श अरु, मन-भावों को मानो,
प्रियाप्रिय में सम रह करके, राग-द्वेष मिटा-लो।

30 श्रोत्रेन्द्रिय का विषय 'शब्द' है, इसमें ना भरमाना,
शब्द राग से मृग का जैसे, अकाल मरण को पाना,
शब्द में राग-द्वेष को तज के, दुःख की राह छुड़ा-लो।

मनोज्ञ-अमनोज्ञ 'गन्ध' में समभाव रखना

(मूल गाथाएँ- 48 से 60)

31 घ्राणेन्द्रिय का विषय 'गन्ध' है, इसमें ना भरमाना,
गन्ध राग से साँप का जैसे, अकाल मरण को पाना,
गन्ध में राग-द्वेष को तज के, दुःख की राह छुड़ा-लो।

मनोज्ञ-अमनोज्ञ 'रसों' में समभाव रखना

(मूल गाथाएँ- 61 से 73)

32 रसनेन्द्रिय का विषय 'रस' है, इसमें ना भरमाना,
जैसे मीन का माँस-राग में, विंध के जान गँवाना,
रस में राग-द्वेष को तज के, दुःख की राह छुड़ा-लो।

मनोज्ञ-अमनोज्ञ 'स्पर्शों' में समभाव रखना

(मूल गाथाएँ- 74 से 86)

33 'स्पर्श' विषय है प्राणीतन का, इसमें ना भरमाना,
जैसे महिष शीत-रागी का, नक्र से जान गँवाना,
स्पर्श में राग-द्वेष को तज के, दुःख की राह छुड़ा-लो।

मनोज्ञ-अमनोज्ञ 'भावों' में समभाव रखना

(मूल गाथाएँ- 87 से 99)

34 मन का विषय 'भाव' है जानो, इसमें ना भरमाना,
कामगुणों से कुंजर का, जैसे जान फँसाना,
राग-द्वेष हो नहीं भावों में, दुःख की राह छुड़ा-लो।

रागी के लिए दुःख के हेतु वीतरागी के लिए नहीं

(मूल गाथाएँ- 100 से 103)

35 इन्द्रिय-मन के विषय यहाँ, रागी के दुःख कारण,
होते नहीं वीतराग के, किंचित् दुःख के कारण,
राग-द्वेष विषयों में छोड़ो, समता भाव धरा-लो।

36 कामासक्त विविध भावों से, दुष्परिणाम है पाता,
दीन-हीन लज्जित बनके, अनचाहा हो जाता,
विकृत भाव दुःखों के कारण, भाव शुद्ध कर डालो।

राग-द्वेषादि प्रवेश स्रोतों से सावधान

(मूल गाथाएँ- 104 एवं 105)

37 शिष्य न चाहे सेवा के हित, तप-लब्धि ना चाहे,
इन्द्रियवश में हो जाने से, विकृत होती राहें,
दीक्षा लेकर के साधक जन, अंतवेदना टाळौ।

38 विकृति पाकर सुखाभिलाषी, मोह सिंधु में गिरता,
कल्पित दुःख निवारण हेतु, फिर उद्यम है करता,
ऐन्द्रिक सुख आसक्ति तज के, भावी दुःख मिटा-लो।

विरक्तात्मा का पुरुषार्थ और संकल्प

(मूल गाथाएँ- 106 से 107)

39 ऐन्द्रिक विषय विरक्तों में, राग-द्वेष नहीं लाते,
समता धारण करने से, मनोविकार मिट जाते,
संकल्प-विकल्पों को तज कर, तृषा क्षीण कर डालो।

वीतरागी की सर्वकर्मों से मुक्ति का क्रम

(मूल गाथाएँ- 108 से 111)

40 वीतरागता की प्राप्ति कर, मोह कर्म कट जाता,
ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अन्तराय भी जाता,
केवलज्ञानी-दर्शी बनकर, अनाश्रवी बन चालो।

41 सब भावों को करे प्रकाशित, शुक्ल ध्यान वह ध्याता,
आयु क्षय हो जाने पर, शिवपद को पा जाता,
पाकर कर्म-रोग से मुक्ति, सुख अनन्त बसा-लो।

42 अनादिकाल से दुःख मुक्ति का, मार्ग यही बतलाते,
सम्यक् अपना करके प्राणी, अनन्त सुखों को पाते,
छोड़ प्रमाद को अब तो चेतन, मोक्ष मार्ग अपना-लो।

सूक्तियाँ

1. **नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अन्नाण-मोहस्स विवज्जणाए।**
रागस्स दोसस्स य संखएणं, एगन्तसोक्खं समुवेइ मोक्खं।। -32/2
सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकाशन से, अज्ञान और मोह के परिहार से और राग और द्वेष के सर्वथा क्षय से जीव एकान्त सुखरूप मोक्ष को प्राप्त करता है।

2. **तस्सेस मग्गो गुरुविद्धसेवा, विवज्जणा बालजणस्स दूरा।**
सज्झाय-एगंत-निसेवणा य, सुत्तऽत्थ-संचिंतणया धिई य।। -32/3
गुरुजनों और वृद्धों की सेवा करना, अज्ञानीजनों के सम्पर्क से दूर रहना, स्वाध्याय करना, एकान्त सेवन, सूत्र और अर्थ का सम्यक् चिन्तन करना एवं धैर्य रखना, यह ज्ञानादि प्राप्त करने का मार्ग है।

3. **मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हाययणं वयंति।** -32/6
मोह का जन्म-स्थान तृष्णा है और तृष्णा का जन्म-स्थान मोह है।

4. **रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयन्ति।**
कम्मं च जाई-मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाई-मरणं वयन्ति।। -32/7
कर्म बन्ध के बीज राग-द्वेष हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। कर्म ही जन्म-मरण का मूल है और जन्म-मरण ही वास्तव में दुःख है।

5. **दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।**
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं।। -32/8
जिसके मोह नहीं है, उसने दुःख का नाश कर दिया। जिसके तृष्णा नहीं है, उसने मोह का नाश कर दिया। जिसके लोभ नहीं है, उसने तृष्णा का नाश कर दिया। जिसके पास कुछ नहीं है, उसने लोभ का नाश कर दिया। (मोह के टूटते ही तृष्णा टूट जाती है, तृष्णा के टूटते ही लोभ टूट जाता है और लोभ के टूटते ही अकिंचनवृत्ति आ जाती है) अर्थात् लोभ को नष्ट करने पर अकिंचनवृत्ति हो जाती है और अकिंचनवृत्ति के हो जाने पर मोह, तृष्णा, लोभ आदि सभी दुःख के कारणभूत बीज नष्ट हो जाते हैं।

6. **जे इन्दियाणं विसया मणुन्ना, न तेसु भावं निसिरे कयाइ।**
न याऽमणुन्नेसु मणं पि कुज्जा, समाहिकामे समणे तवस्सी।। -32/21
समाधि भावना वाला तपस्वी श्रमण इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों में कदापि राग भाव न करे तथा अमनोज्ञ विषयों में मन से भी द्वेष भाव न करे।

7. **मणस्स भावं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।**
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरागो।। -32/87
भाव को मन का ग्राह्य विषय कहा है। जो भाव राग का कारण है, उसे मनोज्ञ कहते हैं और जो भाव द्वेष का कारण है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं। जो इन दोनों में समभाव रखता है वह वीतराग है।

8. **न कामभोगा समयं उवेन्ति, न यावि भोगा विगइं उवेन्ति।**
जे तप्पओसि य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ।। -32/101
काम-भोग अपने आप में न समता उत्पन्न करते हैं और न विकृति पैदा करते हैं। उनके प्रति जो द्वेष और ममत्व रखता है, वह मोह के कारण विकृति को प्राप्त करता है।

तेतीसवाँ अध्ययन : कर्म-प्रकृति

अध्ययन-सार गीतिका

गति-गति में जीव फिरता, कर्म-बन्धन से बंधा,
है निरन्तर दुःख पाता, कर्म की जानो विधा।
कर्म-तत्त्व का ज्ञान करके, बन्ध कारण जान-लो,
कर्मक्षय करने की सारी, युक्तियों से काम-लो।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

कर्मों के प्रकार (मूल गाथाएँ- 1 से 3)

1 अष्ट कर्म की मूल प्रकृति, अनुक्रम से मैं कहता,
जिनके बन्धन से संसार में, जीव विवर्तन करता,
मुक्त बनो इनके बन्धन से, अन्तर्बोध करा-लो।

2 दर्शन-ज्ञान आवरण मोह, अन्तराय हैं घाती,
आयु-नाम-गोत्र-वेदना, ये चारों हैं अघाती,
इनके भेद-प्रभेद समझ कर, पुद्गल ज्ञान जगा-लो।।

अष्ट कर्म का स्वरूप (अन्य सूत्रों के आधार से)

3 ज्ञान-गुणों को आवृत्त करता, ज्ञानावरण कर्म है,
दर्शन-गुण आच्छादित करता, दर्शनावरण कर्म है,
वेदनीय सुख-दुःख का हेतु, इनको दूर भगा-लो।

4 हेय-ज्ञेय और उपादेय की, परख नष्ट जो करता,
स्व-पर का जो भान भूला दे, दोष चरित में भरता,
सबसे प्रबल मोह कर्म है, इसकी मार बचा-लो।

5 नियत समय के पूर्ण हुए बिन, अन्य गति नहीं पाता,
काल मर्यादा भव की बाँधे, आयु कर्म कहलाता,
महारम्भ, माया को तजकर, उच्च गति को पा-लो।

6 देह रूप की रचना का, नाम कर्म निर्माता,
उच्च-नीच कुलों का मिलना, गोत्र कर्म प्रदाता,
शक्ति मे जो विघ्न रूप है, अन्तराय को टाळौ।

7 पुद्गल रूप कर्म का जानो, कर्म-वर्गणा उनकी,
राग-द्वेष भावों से आकृष्ट, जीवों के संग चिपकी,
निर्मल बनने के हित पहले, ग्रन्थि-भेद कर डालो।

कर्मों की उत्तर-प्रकृतियाँ (मूल गाथाएँ- 4 से 15)

8 ज्ञानावरण के पाँच भेद है, श्रुत-आभिनिबोधिक,
अवधि-मनःपर्यव-केवल, इन सबका अवरोधिक,
इनके कारण जान-समझ कर, आत्म-स्वरूप सम्भालो।

9 निद्रा, प्रचला, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि,
चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, सब दर्शन की निरुद्धि,
दर्शन के नौ भेद जानकर, मोक्ष पंथ पग भर-लो।

10 वेदनीय के भेद जानलो, साता और असाता,
जिसके कारण जीव यहाँ, सुख-दुःख वेदन पाता,
दुःखों से छुटकारा पाने, दया धर्म को पालौ।

11 मोह कर्म के भेद कहे हैं, दर्शन और चरित जानो,
दर्शन के फिर तीन कहे हैं, भेद चरित के दो मानो,
घात करे सम्यक्त्व गुणों का, मोह नष्ट कर डालो।

12 समकित, मिथ्या, मिश्र भेद, दर्शन मोह के जानो,
कषाय और नोकषाय भेद, चरित मोह के जानो,
भेद अवान्तर और कई हैं, इन सबको समझा-लो।

13 मोह कर्म के शुद्ध दलिक भी, जो सम्यक् हैं होते,
जिसके कारण जीव यहाँ, तत्त्व-रुचि नहीं खोते,
अतत्त्वों में तत्त्व बुद्धि के, मिथ्या मोह को टाळौ।

14 क्रोध, मान, माया अरु लोभ को, चार कषाय बताये,
सहवर्ती इनके जो होते, नो कषाय कहलाये,
कषाय मोह के भेद जानकर, इनसे निज को बचा-लो।

15 अनन्तानुबन्धी एक चतुष्क है, अप्रत्याख्यान दूसरा,
प्रत्याख्यान तीसरा फिर, संज्वलन है निखरा,
सोलह कषाय भेद को जानो, क्रमशः इन्हें छुड़ा-लो।

16 हास्य, रति, अरति, शोक, भीति और जुगुप्सा,
नर, नारी और वेद नपुंसक, विषयों की अभिलाषा,
नौ भेद है नोकषाय के, मन से इन्हें निकालो।

17 दर्शन मोह के भेद तीन है, पच्चीस चरित के जानो,
भेद अट्ठाईस मोह कर्म के, उत्तर-प्रकृति मानो,
मोह बन्ध के कारण सारे, इनको समझ छुड़ा-लो।

18 आयु कर्म के चार भेद हैं, सूत्रों में बतलाते,
नारक-देव तिर्यंच-मनुज सब, आयुष बांध के आते,
जानो आयुष कर्म-बन्ध को, नीच गति को टाळौ।

19 नाम कर्म के युगल भेद हैं, शुभ-अशुभ बतलाये,
शुभ-अशुभ के और भेद भी, भिन्न-भिन्न गिनवाये,
इससे रूप मिले चहुँ गति में, अशुभ नाम को टाळौ।

20 गोत्र कर्म के भेद जानलो, उच्च-नीच कहलाते,
इन दोनों के अष्ट-अष्ट हैं, आगम वचन सिखाते,
उच्च-नीच जाति कुल मिलते, ऊँचा गोत्र बन्धा-लो।

21 अन्तराय के पाँच भेद जो, शक्ति में है बाधक,
दान-लाभ, उपभोग-भोग, इन सबका अवरोधक,
सत्कर्मों में जो बाधक है, बाधा दूर हटा-लो।

कर्मों के प्रदेशाग्र, क्षेत्र, काल और भाव

(मूल गाथाएँ- 16 से 25)

22 कर्म-स्कन्ध अनन्ता होते, एक समय बंधने के,
अनन्त गुणा ग्रन्थिक जीवों से, अनन्त भाग सिद्धों के,
अनन्त दलिक आतम से चिपके, इसकी समझ बिठा-लो।

23 छहों दिशाओं से बाँधे, जीव कर्म के पुद्गल,
सभी प्रदेशों से बन्धते हैं, आत्मा के वे अरिदल,
क्षीर-नीरवत् बन्धन वाले, नियम को समझा-लो।

24 काल स्थिति सब कर्मों की, भिन्न-भिन्न है गाई,
दर्शन, ज्ञान, वेदनीय अरु, अन्तराय की बतलाई,
उत्कृष्ट तीस कोटी सागर है, इसका ज्ञान करा-लो।

25 सत्तर कोटा-कोटी सागर, मोह कर्म की बतलाई,
आयु की तैंतीस सागर, बीस नाम की गाई,
गोत्र कर्म की बीस ही जानो, काल का कर्ज चुका-लो।

26 नाम-गोत्र को छोड़ सभी की, जघन्य स्थिति बतलाई,
अन्तर्मुहूर्त है इन सबकी, आगम में सिखलाई,
नाम-गोत्र की आठ मुहूर्त है, कर्म का बन्ध हटा-लो।

27 कर्मों के इन अनुभागों का, ज्ञान करे सब साधक,
तीव्र-मन्द परिणाम जान कर, निरोध करे आराधक,
क्षय करके सारे कर्मों का, शाश्वत सुख को पा-लो।

सूक्तियाँ

1. **नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा।**
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य।।
नाम कम्मं च गोयं, च अन्तरायं तहेव य।
एवमेयाइ कम्माइं, अट्ठेव उ समासओ।। -33/2, 3

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय, ये आठ कर्म हैं।

2. **सव्वजीवाण कम्मं तु, संगहे छद्दिसागयं।**
सव्वेसु वि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बद्धगं।। -33/18

सभी जीव छह दिशाओं में रहे हुए कार्मणवर्गणा के पुद्गलों को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करते हैं। वे सभी कर्म बन्ध के समय आत्मा के समस्त प्रदेशों के साथ सर्व प्रकार से बद्ध हो जाते हैं। (कर्म बन्ध का एक नियम है- आत्मा सब कर्म प्रकृतियों के प्रायोग्य पुद्गलों का ग्रहण सामान्य रूप से करती है और अध्यवसाय की भिन्नता के आधार पर उन्हें ज्ञानावरण आदि विभिन्न रूपों में परिणत करती है। कर्म बन्ध का दूसरा नियम है- कर्म पुद्गल आत्मा के सभी प्रदेशों के साथ सम्बद्ध होते हैं, कुछेक प्रदेशों के साथ नहीं।)

चौत्तीसवाँ अध्ययन : लेश्या अध्ययन

अध्ययन-सार गीतिका

शुभ-अशुभ के भाव ही तो, लेश्या के आधार हैं,
बन्ध होता कर्म का भी, उनके ही अनुसार है।
अशुभ लेश्या त्याग करके, शुभ को अपनाएँ सदा,
करके अध्यवसाय शुद्धि, पायें निज की संपदा।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

अध्ययन प्रवेश (अन्य ग्रन्थों के आधार से)

1 जैसे अध्यवसाय हैं होते, आभा वैसी बनती,
उसके ही अनुरूप है होती, वर्णादि की परिणति,
उससे मनोभाव जो बनते, लेश्या उसे कहा-लो।

2 पौद्गलिक है तन की चर्या, उसे द्रव्य हैं कहते,
ग्रहण करे जो जैसे पुद्गल, भाव तथाविध बनते,
इक-दूजे को करे प्रभावित, इसकी समझ करा-लो।

3 भाव-कर्म से द्रव्य कर्म का, आश्रव होता रहता,
द्रव्य-कर्म फिर भाव-कर्म के, कारण को है रचता,
पुद्गल निमित्त बना है इसमें, इसका रूप सिखा-लो।

अध्ययन का उपक्रम (मूल गाथाएँ- 1 एवं 2)

4 लेश्याओं के अनुभावों को, अनुक्रम से अब सुनना,
नाम-वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्श, अरु परिणाम समझना,
लक्षण-स्थान-स्थिति-गति और, आयु ज्ञान करा-लो।

नामद्वार (मूल गाथा- 3)

5 पुद्गल के संयोगों से ही, भाव आत्म के बनते,
शुभ-अशुभ उन लेश्याओं से, कर्म यथाविध बन्धते,
पहले उनके नाम जानकर, लेश्या परिचय पा-लो।

6 तीन अशुभ लेश्याएँ होती, कृष्ण-नील-कापोती,
तेजो-पद्म-शुक्ल तीन ये, लेश्याएँ शुभ होती,
वर्ण प्रभावित लेश्याओं को, सुनकर समझ बढ़ा-लो।

वर्णद्वार (मूल गाथाएँ- 4 से 9)

7 वर्ण अपेक्षा से पहचानो, कैसी है लेश्याएँ?
सजल मेघ सम वर्ण कृष्ण का, अंजन सी बतलाए,
तरु अशोक सम वर्ण नील का, या वैदूर्य कहा-लो।

8 अलसी फूल सम वर्ण काऊ का, या कपोत की ग्रीवा,
वर्ण तेज का दीपक-सा या, उदित सूर्य सजीवा,
पद्म का हल्दी शुक्ल शंख-सा, इनके तुल्य कहा-लो।

रसद्वार (मूल गाथाएँ- 10 से 15)

9 कृष्ण का रस कड़वे तुम्बे से, अनन्त गुणा बतलाया,
नील का रस त्रिकटुक से तीखा, अनन्त गुणा है कहाया,
कषाय कपित्थ से अनन्तगुणा,काऊ का स्वाद चखा-लो।

10 पके आम या कपित्थ का रस, होता खट्टा-मीठा,
रस तेजो का उससे भी है, अनन्त गुणा है अनूठा,
शुद्ध मनोवृत्ति बनती उससे, प्रतिफल बोध करा-लो।

11 उत्तम मदिरा या आसव रस, अम्ल-कसैला होता,
पद्म का रस जानो उससे भी, अनन्त गुणा है होता,
मनोवृत्ति शुद्धतर बन जाती, मन में इसे बसा-लो।

12 खजूर अथवा द्राक्षा का रस, बड़ा मधुर है होता,
शुक्ल का रस उससे भी जानो, अनन्त गुणा है होता,
मनोवृत्ति शुद्धतम बन जाती, परम-भूमिका पा-लो।

गन्धद्वार (मूल गाथाएँ- 16 एवं 17)

13 जैसे मृत श्वान-सर्प-गौ, दुर्गन्धयुक्त हैं होती,
अशुभ मनोवृत्ति मानो उससे, अनन्त गुणी है होती,
कृष्ण-नील-कापोत त्याज्य है, इनका संग छुड़ा-लो।

14 जैसे शुभ पुष्पों की सौरभ, बड़ी सुवासित होती,
उससे भी शुभ भावों की है, अनन्तगुणी वो होती,
तेजो-पद्म-शुक्ल इष्ट है, उत्तरोत्तर अपना-लो।

स्पर्शद्वार (मूल गाथाएँ- 18 एवं 19)

15 शाक वनस्पति के पत्तों का, कर्कश स्पर्श है होता,
अशुभ मनोभावों का उससे, अनन्तगुणा है होता,
कृष्ण-नील-कापोत तीन से, निज संसर्ग छुड़ा-लो।

16 नवनीत, शिरीष के पुष्पों का, स्पर्श है कोमल होता,
शुभ-भावों का जानो उससे, अनन्तगुणा है होता,
तेजो-पद्म-शुक्ल तीन से, निज सम्बन्ध जुड़ा-लो।

वर्णादि की उपमा से उपर्युक्त कथन का भाव

17 कृष्ण-नील-कापोत तीन ये, अविशुद्ध है कहाईं,
अप्रशस्त वर्णादि इन सबके, भाव भरे अधमाई,
अध्यवसाय है क्लेशयुक्त और, इनसे पिण्ड छुड़ा-लो।

18 तेजो-पद्म-शुक्ल को जानो, विशुद्ध तीन कहाईं,
प्रशस्त सभी वर्णादि इनके, भाव भरे अच्छाई,
अध्यवसाय बने शुभ इनसे, मुक्ति राह बना-लो।

19 वर्णादि की उपमा से यह, कथन किया है सबका,
आशय अनिष्ट-इष्ट से समझो, उपमाओं से इनका,
पहली तीन अनिष्ट कही है, बाकी इष्ट कहा-लो।

परिणामद्वार (मूल गाथा- 20)

20 विविध रंग के द्रव्यों से ज्यूं, रत्न तथाविध दिखते,
बहुविध द्रव्यों के योगों से, परिणाम अनेकों मिलते,
लेश्या परिणत इक-दूजे में, इसका बोध करा-लो।

21 लेश्याओं के तीन प्रमुख उन, परिणामों को जानो,
जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट तीन, और अनेकों मानो,
संख्या का नियमन नहीं होता, आगम से सिखला-लो।

लक्षणद्वार (मूल गाथाएँ- 21 से 32)

22 पंचाश्रव में प्रवृत्त रहता, आरंभ में अनुरक्ति,
त्रिगुप्ति से है नहीं गोपित, क्षुद्र-क्रूरता रुचती,
इन योगों से युक्त मनुज के, लक्षण कृष्ण कहा-लो।

23 ईर्ष्यालु और कदाग्रही जो, मायावी अरु अज्ञानी,
धूर्त्त-प्रमादी-तीव्रारम्भी, मद-मस्ती है सुहानी,
इन योगों से युक्त मनुज के, लक्षण नील कहा-लो।

24 वचन-वक्र, आचार-वक्र जो, कपटी दोष छिपाता,
मिथ्यादृष्टि ईर्ष्यालु और, चौर्यवृत्ति अपनाता,
इन योगों से युक्त मनुज के, लक्षण काऊ कहा-लो।

25 नम्रवृत्ति है, चपल नहीं जो, माया-कुतुहल तजता,
विनीत-दान्त-उपधानवान् है, स्वाध्याय में रमता,
इन योगों से युक्त मनुज के, लक्षण तेज कहा-लो।

26 शान्तचित्त-उपशान्त कषायी, आत्मदमी बन रहता,
योगवान्-उपधानवान् और, अल्पवचन ही कहता,
इन योगों से युक्त मनुज के, लक्षण पद्म कहा-लो।

27 आर्त्त-रौद्र को तज करके जो, धर्म-शुक्ल में रहता,
समिति-गुप्ति पालन कर्त्ता, अरु आत्मजयी बन रमता,
इन योगों से युक्त मनुज के, लक्षण शुक्ल कहा-लो।

स्थानद्वार (मूल गाथा- 33)

28 असंख्य कालचक्र के जितने, समय हुआ करते हैं,
असंख्य लोकाकाश के जितने, प्रदेश हुआ करते हैं,
शुभ-अशुभ दोनों लेश्या के, उतने स्थान कहा-लो।

29 अशुद्ध-शुद्ध के तारतम्य से, लेश्या स्थान कहे हैं,
कर्मबन्ध वैसे ही होते, आगम वचन कहे हैं,
केवलज्ञानी सबको ही जाने, आगम ज्ञान बढ़ा-लो।

स्थितिद्वार (मूल गाथाएँ- 34 से 39)

30 जघन्य स्थिति कृष्ण लेश्या की, अन्तर्मुहूर्त्त बताई,
तेतीस सागर एक मुहूर्त्त है, जानो इसकी अधिकाई,
अल्प-अधिकतम कालमान ये, इक भव का समझा-लो।

31 जघन्य स्थिति नील लेश्या की, अन्तर्मुहूर्त्त बताई,
दस सागर और भाग असंख्या, पल की है अधिकाई,
अल्प-अधिकतम कालमान ये, इक भव का समझा-लो।

32 जघन्य स्थिति काऊ की है, अन्तर्मुहूर्त्त बताई,
तीन सागर और भाग असंख्या, पल की है अधिकाई,
अल्प-अधिकतम कालमान ये, इक-भव का समझा-लो।

33 जघन्य स्थिति तेजो की है, अन्तर्मुहूर्त्त बताई,
दो सागर और भाग असंख्या, पल की है अधिकाई,
अल्प-अधिकतम कालमान ये, इक-भव का समझा-लो।

34 जघन्य स्थिति पद्म की है, अन्तर्मुहूर्त्त बताई,
दस सागर अरु एक मुहूर्त्त है, जानो इसकी अधिकाई,
अल्प-अधिकतम कालमान ये, इक-भव का समझा-लो।

35 जघन्य स्थिति शुक्ल की है, अन्तर्मुहूर्त्त बताई,
तेतीस सागर अरु एक मुहूर्त्त है, जानो इसकी अधिकाई,
अल्प-अधिकतम कालमान ये, इक-भव का समझा-लो।

चारों गतियों में लेश्या की स्थिति (मूल गाथाएँ- 40 से 55)

36 सामान्य स्थिति लेश्याओं की, अब तक है बतलाई,
चार गति में अब जानो तुम, स्थिति कैसी होई,
अनुक्रम से सब सुनकर के अब, अपना ज्ञान बढ़ा-लो।

37 दस हजार वर्ष जघन्य है, काउ की है कहाई,
तीन सागर और भाग असंख्या, पल की है अधिकाई,
अल्प-अधिकतम कालमान ये, नारक में समझा-लो।

38 तीन सागर और भाग असंख्या, पल जघन्य बतलाई,
दस सागर और भाग असंख्या, पल की है अधिकाई,
नील की अल्प-अधिकतम जानो, नारक में समझा-लो।

39 दस सागर और भाग असंख्या, पल जघन्य बतलाई,
तेतीस सागर कालमान की, इसकी है अधिकाई,
कृष्ण की अल्प-अधिकतम जानो, नारक में समझा-लो।

40 नर-तिर्यंचों की अब सुनलो, शुक्ल छोड़ बतलाई,
जघन्य और उत्कृष्ट है दोनों, अन्तर्मुहूर्त्त कहाई,
कालमान ये प्रथम पांच में, उनमें ये समझा-लो।

41 शुक्ल की जघन्य स्थिति जानो, अन्तर्मुहूर्त्त बताई,
नव वर्ष कम क्रोड़ पूर्व की, इसकी है अधिकाई,
सयोग केवली की होती है, इसका ज्ञान करा-लो।

42 कृष्ण की स्थिति जो देवों में, आगम में बतलाई,
जघन्य दस हजार वर्ष की, इनकी है समझाई,
उत्कृष्ट असंख्या भाग पल्य का, उन भव में समझा-लो।

43 कृष्ण की जितनी उत्कृष्ट उसमें, समय एक मिलालो,
वही जघन्य नील की होती, ऐसा तुम समझा-लो,
उत्कृष्ट असंख्या भाग पल्य का, देवों में समझा-लो।

44 नील की जितनी उत्कृष्ट उसमें, समय एक मिलालो,
जघन्य वही काऊ की होती, ऐसा तुम समझा-लो,
उत्कृष्ट असंख्या भाग पल्य का, देवों में समझा-लो।

45 जघन्य एक पल्योपम की है, तेजो की बतलाई,
दो सागर और भाग असंख्या, पल की है अधिकाई,
अल्प अधिकतम कालमान है, देवों में समझा-लो।

46 भवनपति और व्यंतर में, तेजो की बतलाई,
जघन्य दस हजार वर्ष की, स्थिति है समझाई,
दो सागर भाग असंख्या पल, उत्कृष्ट ये समझा-लो।

47 तेजो की उत्कृष्ट स्थिति में, समय एक मिलालो,
जघन्य वही पद्म की होती, ऐसा तुम समझा-लो,
उत्कृष्ट दस सागर एक मुहूर्त्त, देवों में समझा-लो।

48 पद्म की उत्कृष्ट स्थिति में, समय एक मिलालो,
जघन्य वही शुक्ल की होती, ऐसा तुम समझालो,
उत्कृष्ट तेतीस सागर अरु मुहूर्त्त, देवों में समझा-लो।

49 देवों में लेश्या की स्थिति, देव अपेक्षा से जानो,
भिन्न-भिन्न होती देवों में, टीकाओं से पहचानो,
चार गति में लेश्या का यूँ, कालमान समझा-लो।

गतिद्वार (मूल गाथाएँ- 56 एवं 57)

50 कृष्ण-नील-कापोत अधर्म है, दुर्गति में भटकाती,
तेजो-पद्म-शुक्ल धर्म है, सद्गति में पहुँचाती,
शुक्ल निमित्त है केवली की फिर, सिद्धगति को पा-लो।

आयुष्यद्वार (मूल गाथाएँ- 58 से 60)

51 समय प्रथम या अंतिम में, जो भी लेश्या है मिलती,
उसी काल में दूजे भव में, आत्म गमन ना करती,
अन्तर्मुहूर्त्त काल का रहना, अहम बात समझा-लो।

52 जन्म काल में अतीत भव का, मृत्यु में आगे का,
आवश्यक लेश्या का रहना है, अन्तर्मुहूर्त्त तक का,
उत्पन्न हों फिर उस लेश्या में, नियम ये समझा-लो।

उपसंहार (मूल गाथा- 61)

53 विपाक समझ कर लेश्याओं के, मन में भाव सजाएँ,
तजे अशुभ सारी लेश्याएँ, शुभ में थिर हो जाएँ,
अध्यवसाय करें शुभ अपने, सद्गति राह बना-लो।

सूक्तियाँ

अप्रशस्त लेश्याएँ –

1. **पंचासवप्पवत्तो तीहिं अगुत्तो, छसुं अविरओ य।**
तिव्वारम्भपरिणओ, खुद्दो साहसिओ नरो।।
निद्धन्धसपरिणामो, निस्संसो अजिइन्दिओ।
एयजोगसमाउत्तो, किण्हलेसं तु परिणमे।। -34/21, 22

जो मनुष्य पाँच आश्रवों में प्रवृत्त है, तीन गुप्तियों से अगुप्त है, षट्कायिक जीवों के प्रति अविरत (असंयमी) है, तीव्र आरम्भ में परिणत (संलग्न) है, क्षुद्र एवं अविवेकी है, निःशंक परिणाम (पारलौकिक भयों से रहित अथवा जो प्राणियों को होने वाली पीड़ा की परवाह नहीं करता) करने वाला है, क्रूर है, अजितेन्द्रिय है, जो इन योगों से युक्त है, वह कृष्ण लेश्या के लक्षण वाला है।

2. **इस्सा-अमरिस-अतवो, अविज्ज-माया अहीरिया य।**
गेद्धी पओसे स सढे, पमत्ते रसलोलुए सायगवेसए य।।
आरम्भो अविरओ, खुद्धो साहस्सिओ नरो।
एयजोगसमाउत्तो, नीललेसं तु परिणमे।। -34/23, 24

जो ईर्ष्यालु है, असहिष्णु या कदाग्रही है, अतपस्वी है, अज्ञानी है, मायावी है, निर्लज्ज है, विषयासक्त है, प्रद्वेषी है, धूर्त्त है, प्रमादी है, रसलोलुप है, सुख-सुविधा ढूँढता है, आरम्भ से अविरत है, क्षुद्र है, दुःसाहसी है, इन योगों से युक्त है, वह नील लेश्या के लक्षण वाला है।

3. **वंके वंकसमायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए।**
पलिउंचग ओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारिए।।
उप्फालग-दुट्ठवाई य, तेणे यावि य मच्छरी।
एयजोगसमाउत्तो, काउलेसं तु परिणमे।। -34/25, 26

जो मनुष्य वाणी से वक्र है, आचार से वक्र है, कुटिल है, सरलता से रहित है, स्वदोषों को छिपाने वाला है, सर्वत्र छल-प्रपंच करने वाला है, मिथ्यादृष्टि

है, अनार्य है, जैसा मुँह में आया वैसा दुर्वचन बोलने वाला है, चोर है, डाह करने वाला है, इन योगों से युक्त व्यक्ति कापोत लेश्या के लक्षण वाला है।

प्रशस्त लेश्याएँ-

4. **नीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले।**
विणीयविणए दन्ते, जोगवं उवहाणवं।।
पियधम्मे दढ़धम्मे, वज्जभीरू हिएसए।
एयजोगसमाउत्तो तेउलेसं तु परिणमे।। -34/27, 28

जो नम्रवृत्ति का है, चपलता से रहित है, माया से रहित है, कौतूहल से दूर है, विनय करने में अभ्यस्त है, दान्त है, स्वाध्यायादि से समाधि सम्पन्न है, उपधानवान् है, प्रियधर्मी है, दृढ़धर्मी है, पापभीरु है, आत्मार्थी है, इन योगों से युक्त व्यक्ति तेजोलेश्या के लक्षण वाला है।

5. **पयणुक्कोह-माणे य, माया-लोभे य पयणुए।**
पसन्तचित्ते दन्तप्पा, जोगवं उवहाणवं।।
तहा पयणुवाई य, उवसन्ते जिइन्दिए।
एयजोगसमाउत्ते पम्हलेसं तु परिणमे।। -34/29, 30

जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त मन्द हो गये हैं, जो प्रशान्त-चित्त है, जिसने आत्म-दमन कर लिया है, जो योगवान् और उपधानवान् है, जो अल्पभाषी है, जो उपशान्त है और जो जितेन्द्रिय है, इन योगों से युक्त व्यक्ति पद्मलेश्या के लक्षण वाला है।

6. **अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, धम्मसुक्काणि झायए।**
पसन्तचित्ते दन्तप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिहिं।।
सरागे वीयरागे वा, उवसन्ते जिइन्दिए।
एयजोगसमाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे।। -34/31, 21

जो आर्त्त और रौद्र ध्यानों का त्याग करके धर्म और शुक्ल ध्यानों में लीन है, जो प्रशान्त-चित्त है, दान्त है, जो पाँच समितियों से समित और तीन गुप्तियों से गुप्त है, ऐसा व्यक्ति सराग हो या वीतराग, किन्तु जो उपशान्त है, जितेन्द्रिय है, इन योगों से युक्त व्यक्ति शुक्ललेश्या के लक्षण वाला है।

7. **किण्हा नीला काऊ, तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।**
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गहं उववज्जई बहुसो।।
तेऊ पम्हा सुक्का तिन्नि, वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, सुग्गइं उववज्जई बहुसो।। -34/56, 57

कृष्ण, नील और कापोत, ये तीनों ही अधर्म लेश्याएँ हैं, इन तीनों से जीव अनेक बार दुर्गति में उत्पन्न होता है। तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्याएँ धर्मलेश्याएँ हैं, इन तीनों से जीव अनेक बार सुगति में उत्पन्न होता है।

पैंत्तीसवाँ अध्ययन : अनगारमार्ग-गति

अध्ययन-सार गीतिका

अनगार बनकर मार्ग में, पुरुषार्थ हो आचार में,
मार्ग के परीषह सहे, आस्वाद नहीं सत्कार में।
शुक्ल ध्यान में लीन रहके, मोह-माया को तजे,
मृत्यु समय इस देह को, संलेखना करके तजे।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

अनगार मार्ग के आचरण का फल (मूल गाथा- 1 एवं 2)

1 तीर्थंकर उपदिष्ट मार्ग को, एकचित्त हो सुनना,
करे आचरण जो प्रभु पथ का, मिटना जनना-मरना,
मुनिपद पाकर फिर ना उलझे, घर का राग भूला-लो।

पापाश्रवों का परित्याग (मूल गाथा- 3)

2 हिंसा, झूठ, चौर्य-कर्म की, करे न मन से इच्छा,
त्याग करे अब्रह्म पाप का, लोभ न समझे अच्छा,
मोक्ष लक्ष्य में संयमी साधक, आतम हित को पा-लो।

अनगार के निवास स्थान का विवेक

(मूल गाथाएँ- 4 से 7)

3 चित्रयुक्त घर कभी न ठहरे, इन्द्रिय दमन है दुष्कर,
परकृत घर या वृक्ष मूल ही, साधक को है हितकर,
प्रासुक, नारीवासरहित ही, वो स्थान बसा-लो।

गृहकर्म समारम्भ निषेध (मूल गाथाएँ- 8 एवं 9)

4 गृह निर्माण करे ना भिक्षु, पर से न करवाए,
त्रस-स्थावर जिसमें हिंसा, प्रत्यक्ष पाप बताए,
भला न समझे पापारम्भ को, करुणा भाव जगा-लो।

भोजन पकाने व पकवाने का निषेध

(मूल गाथाएँ- 10 से 12)

5 जीवदया हित भक्त-पान को, नहीं स्वयं पकाता,
औरों से भी नहीं पकवाता, भला नहीं बतलाता,
अग्नि की दाहकता गहरी, उससे जीव बचा-लो।

क्रय-विक्रय वृत्ति का निषेध (मूल गाथाएँ- 13 से 16)

6 स्वर्ण-रजत मिट्टी सम जाने, करे न मन से इच्छा,
क्रय-विक्रय में दोष समझता, भिक्षु धर्म ही सच्चा,
सूत्रविधि से भिक्षावृत्ति हो, समता भाव जगा-लो।

रस लोलुपता व पूजा-प्रतिष्ठा निषेध और अकिंचनता

(मूल गाथाएँ- 17 से 19)

7 भोजन करता संयम के हित, बनकर रसना त्यागी,
वंदन-पूजन-अर्चन में मुनि, रहता सदा विरागी,
नहीं निदान,अकिंचन बनकर,शुक्ल-ध्यान चित्त ध्यालो।

अन्तिम आराधना (मूल गाथाएँ- 20 एवं 21)

8 अन्त समय आहार त्याग कर, तन की ममता त्यागे,
अहं न रखता, ममता तजता, वीतरागता जागे,
निर्मल केवलज्ञान प्राप्त कर, शाश्वत सुख को पा-लो।

सूक्तियाँ

1. **इन्दियाणि उ भिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए।**
दुक्कराइं निवारेउं, कामराग विवड्ढणे।। -35/5
काम राग को बढ़ाने वाले निवास स्थान में भिक्षु के लिए इन्द्रियों का निरोध करना दुष्कर है।

2. **फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए।**
तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परम-संजए।। -35/7
परम संयत भिक्षु प्रासुक, अनाबाध एवं स्त्रियों से रहित स्थानों में रहने का संकल्प करे।

3. **न सयं गिहाइं कुज्जा णेव अन्नेहिं कारए।** -35/8
भिक्षु न स्वयं गृह-निर्माण करे और न ही दूसरों से करवाये।

4. **न पये, न पयावए।** -35/10
भिक्षु न स्वयं पकाए और न दूसरों से पकवाए।

5. **कय-विक्कयम्मि वट्टंतो, भिक्खू न भवइ तारिसो।** -35/14
क्रय-विक्रय में जो प्रवृत्त होता है वह भिक्षु के लक्षणों से युक्त नहीं है।

6. **लाभालाभम्मि संतुट्ठे, पिण्डवायं चरे मुणी।** -35/13
लाभ और अलाभ में संतुष्ट रहकर भिक्षु भिक्षाचर्या करे।

7. **समुयाणं उंछमेसिज्जा, जहासुत्तमणिन्दियं।**
लाभालाभम्मि संतुट्ठे, पिण्डवायं चरे मुणी। -35/16
मुनि शास्त्र विधान के अनुसार अनिन्दित, अनेक घरों से थोड़े-थोड़े आहार की गवेषणा करे। लाभ और अलाभ में संतुष्ट रहकर भिक्षाचर्या करे।

8. **जवणट्ठाए महामुणी।** -35/17
भिक्षु संयम-यात्रा के लिए ही भोजन करे।

9. **अच्चणं रयणं चेव, वंदणं पूयणं तहा।**
इड्ढी-सक्कार-सम्माणं, मणसा वि न पत्थए। -35/18
मुनि अर्चना, रचना, वन्दना, पूजा, ऋद्धि, सत्कार और सम्मान की मन से भी अभिलाषा न करे।

10. **अणियाणे अकिंचणे।** -35/19
मुनि निदान रहित और अकिंचन रहे।

11. **निज्जूहिऊण आहारं, कालधम्मे उवट्ठिए।**
जहिऊण माणुसं बोन्दिं, पहू दुक्खे विमुच्चई।। -35/20
अन्त में कालधर्म उपस्थित होने पर मुनि आहार को छोड़ कर, संलेखना-संथारा पूर्वक शरीर को त्याग कर दुःखों से विमुक्त होकर प्रभु हो जाता है।

छत्तीसवाँ अध्ययन : जीवाजीव-विभक्ति

अध्ययन-सार गीतिका

जीव और अजीव दोनों, लोक के आधार हैं,
स्वरूप इनका जानना ही, ज्ञान का विस्तार है।
भेद इनका जानकर, संयोग इनका हो अलग,
भेद का विज्ञान करता, कर्म-बन्धन से सजग।।

सूत्र-गीत

(लय - गुण सौरभ से रहे महकता, ऐसा अपना घर हो)

वीर प्रभु की अन्तिम वाणी, सुन-लो और सुना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।
उत्तराध्ययन में गुंजित होती, प्रभु शिक्षा अपना-लो,
जीवन धन्य बना-लो।।टेर।।

प्रतिपाद्य विषय और उसका प्रयोजन

(मूल गाथाएँ- 1 एवं 2)

1 जीव-अजीव का भेद बताऊँ, एक चित्त हो सुनना,
संयम का सम्यक् आराधन, इसे जानकर करना,
जीव-अजीव के अवबोधन से, सम्यक् ज्ञान बढ़ा-लो।

अजीव का निरूपण : अरूपी अजीव

(मूल गाथाएँ- 3 से 9)

2 भेद कहे दो अजीव द्रव्य के, रूपी और अरूपी,
चार रूपी के दस अरूपी के, जानो शुद्ध स्वरूपी,
आगे सुनने इनका वर्णन, आस्था दृढ़ बना-लो।

3 लोक जीव-अजीव रूप है, जिनवर ने बतलाया,
द्रव्य-क्षेत्र और काल-भाव से, इसको है समझाया,
एकमात्र आकाश जहाँ है, अलोक उसे समझा-लो।

4 धर्म-अधर्म और आकाश के, तीन भेद बतलाये,
स्कन्ध-देश-प्रदेश तीसरा, सब मिल के नौ गाये,
दसवाँ काल अरूपी अजीव का, भेद ये इतने गिना-लो।

5 धर्म-अधर्म और आकाश ये, तीनों द्रव्य अनादि,
सर्वकाल में कहे गये हैं, नहीं इनकी है आदि,
प्रवाह अपेक्षा काल द्रव्य भी, अनादि अनन्त कहा-लो।

अजीव का निरूपण : रूपी अजीव (मूल गाथाएँ- 10 से 47)

6 रूपी अजीव के भेद चार है, स्व-प्रज्ञा से जानो,
स्कन्ध-देश-प्रदेश-परमाणु, श्रद्धा से तुम मानो,
मिलना-बिखरना होता इनमें, पुद्गल गुण समझा-लो।

7 रूपी अजीव द्रव्यों की स्थिति का, लो वर्णन अब सुन-लो,
एक समय और असंख्य काल की, स्थिति इनकी गिन-लो,
अन्तर होता अनन्त काल का, तत्त्व हृदय में जमा-लो।

8 वर्ण-गंध-रस-स्पर्श को लेकर, भंग कई हैं बनते,
रूपी द्रव्यों में परिवर्तन, होता इनको गिनते,
अजीव स्वरूप का करके समापन, जीव विभक्ति गा-लो।

जीव निरूपण : सिद्ध जीवों का (मूल गाथाएँ- 48 से 67)

9 जीव द्रव्य के भेद कहे दो, सिद्ध अरु संसारी,
कर्मनाश कर जीव है पाता, शाश्वत पद अविकारी,
कर्मों के कारण ही भव है, अविचल श्रद्धा जगा-लो।

10 चिन्मय रूप-स्वरूप सिद्धों का, तुमको मैं बतलाऊँ,
संग रहित असंग अवस्था, शब्दों में क्या गाऊँ,
अनेक भेद हैं सिद्ध प्रभु के, सुन पुरुषार्थ बढ़ा-लो।

11 सिद्ध जीवों का स्थान कहाँ है, कहाँ जाकर वे रुकते,
देह छोड़ कर देह मुक्त वे, कहाँ प्रतिष्ठित होते,
जिज्ञासा की हुई जाग्रति, समाधान कर डालो।

12 सिद्धों का है देश निराला, मुक्तों का वो वतन है,
द्वन्द्व-फन्द नहीं छन्द है कोई, रहता बस चेतन है,
रुकते हैं लोक्राग में जाकर, लोक प्रतिष्ठ कहा-लो।

13 सर्वार्थ-सिद्ध से बारह योजन, ईषत् भूमि है आती,
योजन पैंतालीस लाख की, लम्ब-चौड़ी समाती,
तीन गुणी अधिक है परिधि, छत्राकार कहा-लो।

14 अंतिम भव में जिस साधक की, जितनी हो ऊँचाई,
उससे भी है तीन भाग कम, सिद्धों की लम्बाई,
सादि अनन्त और अनादि अनन्त, शाश्वत स्थिति पा-लो।

15 उपमा नहीं है जग में कोई, जिनसे करें हम वर्णन,
अरूपी सत्ता है सनातन, ज्ञान अनन्त है दर्शन,
अनुप सात्त्विक सुख में लीन है, आवागमन को टालौ।

16 सिद्ध प्रभु और सिद्ध स्थान का, सुनकर सारा वर्णन,
चेतन अब करना है तुझको, आत्मदशा का चिंतन,
कर्म-मैल का है बस चिंतन, भेद ये अब तो मिटा-लो।

संसारस्थ जीव निरूपण : स्थावर जीव

(मूल गाथाएँ- 68 से 106)

17 कर्मवश संसारी प्राणी, त्रस और स्थावर होता,
इन्द्रिय शक्ति का अपव्यय कर, एकेन्द्रिय बन रोता,
पृथ्वी-पानी-वनस्पति ये, स्थावर तीन कहा-लो।

18 सूक्ष्म और बादर दो रूप में, पृथ्वी काय को जानो,
अपर्याप्त-पर्याप्त होकर के, चार भेद पहचानो,
भेद-प्रभेद अनेक हैं इनके, तत्त्वज्ञान बढ़ा-लो।

19 पृथ्वी सम अप्काय को जानो, वर्णन है तद्रूपा,
सूक्ष्म-बादर पर्याप्त-अपर्याप्त, आगम के अनुरूपा,
गति-आगति सभी है समाना, आत्म-भाव अपना-लो।

20 बाईस हजार वर्षों तक प्राणी, पृथ्वी में ही रहता,
अप्काय में सात हजार वर्ष, उत्कृष्ट शरीर बदलता,
जघन्य भव है अन्तर्मुहूर्त्त का, सुनकर नींद उड़ा-लो।

21 काय स्थिति पृथ्वी और अप् की, सूक्ष्म काल बतलाई,
असंख्य उत्-अवसर्पिणी तक, गहरी दुःख की खाई,
जन्म-मरण की परम्परा से, मुक्त दशा को पा-लो।

22 तीसरी स्थावर काय वनस्पति, सूक्ष्म-साधारण प्रत्येक,
निकला तू उसमें से चेतन, सिद्ध हुआ जब जीव एक,
पर्याप्त-अपर्याप्त भेद छहों का, ताला अब तो लगा-लो।

23 दस हजार की भव आयु है, वनस्पति की उत्कृष्ट,
जहाँ जीव ने दुःख पाया था, छेदन-भेदन निकृष्ट,
अनन्त काल की काय स्थिति है, अब तो हिंसा टाळो।

संसारस्थ जीव निरूपण : त्रस जीव

(मूल गाथाएँ- 107 से 154)

24 तेउकाय और वायुकाय, ये दो गतित्रस कहलाते,
जलते और जलाते जिससे, तिर्यंच गति को पाते,
समकित धन को पाना हो तो, अन्तर मल को हटा-लो।

25 भेद चार और कायस्थिति भी, पृथ्वी सम ही जानो,
भव-भ्रमण का प्रमुख कारण, भावों को तुम मानो,
भाव बिगड़ते भव भी बिगड़ता, सूत्रसार समझा-लो।

26 तीन रात्रि की भव स्थिति, तेउकाय ने पाई,
सहस्त्र तीन वर्षों की स्थिति, वायुकाय की गाई,
काया का सद्व्यय करके तुम, पुण्यवानी को बढ़ा-लो।

27 त्रस-लब्धि को पाता प्राणी, करके पुण्य का वर्धन,
बेइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक, सुन-लो उनका वर्णन,
आया अनन्त से जाना अनन्त में, समता भाव बढ़ा-लो।

28 काल संख्याता विकलेन्द्रिय की, पर्याय को नहीं त्यागे,
अन्तर्मुहूर्त्त में हो किनारा, यदि पुरुषार्थ है जागे,
दुर्लभ अवसर हाथ में आया, मूर्च्छा दूर भगा-लो।

29 बारह वर्ष है बेइन्द्रिय में, उत्कृष्ट भव की स्थिति,
तेइन्द्रिय में उनपचास रात्रि, चतुः छः मास उत्पत्ति,
अन्तर्मुहूर्त्त की जघन्य जानकर, इनसे किनारा पा-लो।

संसारस्थ जीव का निरूपण : पंचेन्द्रिय त्रस जीव

(मूल गाथाएँ- 155 से 249)

30 पंचेन्द्रिय जीवों के शास्त्र में, भेद हैं चार बताए,
नारक-तिर्यंच और मनुज-देव, ये चार प्रकार कहाए,
कर्मों के अनुसार गति है, सद्पुरुषार्थ जगा-लो।

31 सप्त प्रकार की नारक भूमि, दुःख है जहाँ अनन्ता,
महावेदना अल्पनिर्जरा, पीड़ा का नहीं अन्ता,
कर्मबन्ध में रखके सजगता, सद्पुरुषार्थ जगा-लो।

32 भव स्थिति और काय स्थिति, ये दोनों है एक जैसी,
दस हजार और तेतीस सागर, देवों की भी वैसी,
बस सुख दुःख का अन्तर केवल, कर्म विपाक बता-लो।

33 पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के, भेद दो हैं बतलाये,
सम्मूर्च्छिम और गर्भज तिर्यंच, जाति से कहलाये,
इन दोनों के भेद तीन है, जल-थल-खेचर गा-लो।

34 भव आयु जलचर जीवों की, क्रोड़ पूर्व उत्कृष्टा,
अन्तर्मुहूर्त्त जघन्य बताई, जानो ज्ञाता-द्रष्टा,
समझो ये सिद्धान्त ज्ञान से, सत्य धर्म अपना-लो।

35 अन्तर्मुहूर्त्त की जघन्य आयु, थल जीवों ने पाई,
तीन पल्य की उत्कृष्टा है, सुनलो ध्यान लगाई,
उपकारी सब इक-दूजे के, जीव दया अब पाळौ।

36 गगनगामी नभचर जीवों की, अन्तर्मुहूर्त्त है आयु,
पल के असंख्ये भाग बताई, उत्कृष्ट ये दीर्घायु,
निर्बन्ध हो विचरण करने का, गुण इनसे अपना-लो।

37 जलचर-थलचर-खेचर सबका, अपना-अपना जीवन,
नहीं सताए किसी जीव को, मित्र सभी बान्धवजन,
आत्मवत् सब जीव जगत् के, सखा भाव अपना-लो।

38 पूर्वकोटि पृथक्त्वकाल की, कायस्थिति जलचर की,
पृथक कोटिपूर्ण अधिक, तीन पल्योपम थलचर की,
पल का असंख्या भाग खेचर की, नौ पूर्वकोटि बढ़ा-लो।

39 मनुष्य के दो भेद हैं होते, ध्यान लगाकर सुनना,
सम्मूर्च्छिम और गर्भज ऐसे, मुख्य दो भेद गिनना,
अब इनका विस्तार कहूँगा, चित्त एकाग्र बना-लो।

40 गर्भधारी मानव प्राणी के, भेद तीन बतलाए,
भोगभूमि और कर्मभूमि, अन्तर्द्वीप कहाए,
पन्द्रह, तीस, छप्पन भेदों को, अनुक्रम से गिनवा-लो।

41 जघन्य आयु मनुष्य भव की, अन्तर्मुहूर्त्त बतलायी,
तीन पल की उत्कृष्ट आयु, जिनवर ने फरमायी,
दुर्लभ चोला मानव भव का, इसका लाभ उठा-लो।

42 तीन पल सप्त कोटिपूर्व है, उत्कृष्ट काय स्थिति,
जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त बताई, करना इसमें विरति,
देव दुर्लभ मानव भव है, जन्म-मरण छिटका-लो।

43 भेद बताऊँ देवों के अब, नींद प्रमाद को छोड़ो,
भवनपति संग व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक भी जोड़ो,
दिव्य ऋद्धि-सिद्धि के स्वामी, परिचय उनका करा-लो।

44 दशविध होते भवनपति और, व्यन्तर आठ हैं होते,
ज्योतिष के तो भेद पाँच हैं, वैमानिक दो होते,
कल्पोपन्न और कल्पातीत ये, द्विविध भेद गिना-लो।

45 बारह कल्पोपन्नक हैं जो, देवलोक कहलाते,
नौ ग्रैवेयक, पाँच अनुत्तर, कल्पातीत पद पाते,
अहमिन्द्र बनकर राज हैं करते, आराधक पद पा-लो।

46 देवलोक की स्थिति बतायी, सुनलो ध्यान लगाकर,
जघन्य दस हजार वर्ष है, उत्कृष्ट तेतीस सागर,
काय स्थिति भी यही बताई, काल असंख्य बिता-लो।

47 जीवाजीव विभक्ति का यह, हुआ निरूपण सारा,
उठो करो पुरुषार्थ कि ऐसा, टूटे भव की कारा,
संलेखन संथारा करके, भव से किनारा पा-लो।

संलेखना-साधक की अन्तिम आराधना

(मूल गाथाएँ 250 से 268)

48 संग्राम शीर्ष कहा संथारा, चरम श्वास की साधना,
जन्म दोबारा ना हो ऐसी, निर्मल हो आराधना,
शास्त्र कथित संलेखन करके, आत्मदमन कर डालो।

49 आपीड़न-प्रपीड़न क्रमशः, निष्पीड़न है करना,
बारह वर्ष की तपोसाधना, दृढ़ता अनुपम धरना,
मोह विजय करने के हेतु, पूरी शक्ति लगा-लो।

50 देह कषाय को कृश करना ही, द्रव्य-भाव संलेखन,
बाधक तत्त्व कहे कुछ उसके, करो आत्म-अवलोकन,
दुर्भावों से मन को बचाकर, दुर्गति भ्रमण मिटा-लो।

51 मिथ्यादर्शन में अनुरक्ति, निदान युक्त जो होता,
कृष्ण लेश्या में हो अवगाहित, भार दुःखों का ढ़ोता,
बोधि दुर्लभ हो जाती है, मिथ्या श्रद्धा हटा-लो।

52 श्रद्धा से जिनवचन आदरे, और भावित हो पाले,
पर की चाहना नहीं कामना, भाव निदान हटा-ले,
शुक्ल, शुभ्र, शुभ लेश्यामय हो, बोधि सुलभ बना-लो।

53 अस्थि मज्जा रोम-रोम में, जिनवचनों से प्रीति,
सत्य तथ्य यथार्थ मान जो, करता भाव से भक्ति,
अमल-निर्मल-क्लेश रहित हो, परित्त संसारी कहा-लो।

54 गौरवशाली जिन शासन की, महिमा को नहीं जाने,
वो बेचारा बाल-मरण कर, भटके सुख को पाने,
झूठी है मृगतृष्णा तेरी, बाल-मरण को टालौ।

55 शुद्धभाव और सरल हृदय से, आलोचन है जरूरी,
शल्य है जब तक भीतर जीवित, निश्चय लक्ष्य से दूरी,
आगमज्ञाता गुरुवर सम्मुख, दोष सभी प्रकटा-लो।

56 हास्य विनोद अरु विकथाओं में, अपूर्व ज्ञान ठुकराता,
करने औरों को विस्मित जो, कौतुक बहुत कराता,
आराधक बन मुक्ति पाने, कांदर्पिकता टाळौ।

57 साता-रस-ऋदि हेतु जो, मंत्र प्रयोग है करता,
भूतिकर्म से करे प्रभावित, अभियोगी वह बनता,
लोकैषणा की चाह मिटाकर, शाश्वत सिद्धि पा-लो।

58 प्रत्यनीकता देव गुरु की, दर्शन मोह का कारण,
उपकारी की अवगुण निन्दा, भव-भ्रमण निर्धारण,
तजकर किल्विषिक वृत्ति को, मुदिता भाव जगा-लो।

59 निरनुकम्प हो किसी जीव को, किलामणा उपजाए,
पीड़ित करते उन जीवों को, रोम-रोम हर्षाए,
परम अधर्मी आसुरी वृत्ति, इससे पिण्ड छुड़ा-लो।

60 मोहवश जो प्रभु प्ररूपित, न्याय मार्ग बिसराए,
बन करके उन्मार्ग प्ररूपक, जिनधर्म नहीं पाए,
महामोहनीय से बचने को, आस्था दृढ़ बना-लो।

61 बिन पृच्छा ही वीर प्रभु, अकारण करुणा लाए,
प्रहर सोलह दुर्लभ देशना, जनहित में फरमाए,
श्रद्धा भक्ति और विनय से, उनको शीश नमा-लो।

62 क्या-क्या महिमा गाएँ प्रभु की, जीवन के उपकारी,
अनुपम निधि भेंट दी हमको, हम हैं प्रभु आभारी,
ओ भगवन्! हम साधक तेरे, अपने तुल्य बना-लो।

प्रशस्ति

'रत्नसंघ' आचार्य हुए, सप्तम पूज्य महान्।
तेजस्वी 'गुरु हस्ती' थे, जिनशासन वरदान।।

'मुनि गौतम' को मिल गई, गुरु की कृपा अपार।
सुमिरण करके कर रहा, वंदन अगणित बार।।

हित-शिक्षा गुरु से मिली, उसका ले आधार।
'उत्तराध्ययन' को दे दिया, गीतों का आकार।।

हस्ती पट्टधर 'हीरा' गुरु, उपाध्यायजी 'मान'।
उनके हैं उपकार बड़े, कैसे करूँ बखान।।

काव्य-कृति के सृजन में, मिला मुझे सहकार।
'सम्पत' निष्ठावान के, भाव भरे उद्गार।।

अंतिम वाणी वीर की, स्व-पर हित की खान।
सस्वर वाचन जो करे, पावे सम्यक् ज्ञान।।

दो-हजार-तिहत्तर विक्रमी, पुण्य दिवस गुरुदेव।
सूत्र-काव्य पूरा हुआ, अर्पण करूँ त्वमेव।।

सूक्तियाँ

1. **जं जाणिऊण समणे, सम्मं जयइ संजमे।** -36/1

(जीव और अजीव के विभाग को जानकर) श्रमण सम्यक् प्रकार से संयम में यत्नशील हो। (जो जीव-अजीव को नहीं जानता, वह संयम को नहीं समझ सकता)

2. **जीवा चेव अजीवा, य एस लोए वियाहिए।** -36/2

यह लोक जीव और अजीव रूप कहा गया है।

3. **अजीवदेसमागासे, अलोए से वियाहिए।** -36/2

जहाँ अजीव का एक भाग केवल आकाश है, उसे अलोक कहा गया है।

4. **रूविणो चेवऽरूवी य, अजीवा दुविहा भवे।** -36/4

अजीव दो प्रकार के हैं- रूपी और अरूपी। (जिसमें रूप अर्थात् वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हों, वे रूपी या मूर्त्त, जिसमें ये चारों न हों वे अरूपी या अमूर्त्त।)

5. **धम्माधम्मे य दोऽवेए, लोगमित्ता विहायिया।**
लोगालोगे य आगासे, समए समयखेत्तिए।। -36/7

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, दोनों ही लोक प्रमाण कहे गये हैं। आकाशास्तिकाय लोक और अलोक प्रमाण है। काल समय अढ़ाई द्वीप (जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और अर्ध पुष्कर मनुष्य क्षेत्र या समय क्षेत्र) प्रमाण है। (ये सभी वर्णादि से रहित अरूपी हैं।)

6. **खन्धा य खन्धदेसा य, तप्पएसा तहेव य।**
परमाणुणो य बोद्धव्वा, रूविणो य चउव्विहा।। -36/10

रूपी अजीव द्रव्य चार प्रकार के जानने चाहिए- स्कन्ध, स्कन्ध के देश, स्कन्ध के प्रदेश और परमाणु। (रूपी अजीव अर्थात् पुद्गल। मूल पुद्गल द्रव्य परमाणु है, जिसका दूसरा भाग नहीं होता। दो परमाणु मिलकर स्कन्ध बनते हैं जिन्हें द्विप्रदेशी कहते हैं। इसी तरह अनेक परमाणुओं के एकत्वरूप में परिणत होने पर अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध तक होते हैं। परमाणु जब स्कन्ध से जुड़ा रहता है, तब उसे प्रदेश कहते हैं, जब वह स्कन्ध से पृथक् रहता है तब परमाणु कहलाता है।)

7. **संसारत्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया।** -36/48
जीव दो प्रकार के कहे गये हैं- संसारस्थ और सिद्ध।

8. **अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।** -36/56
सिद्ध अलोक पर रूक जाते हैं, लोक के अग्रभाग में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

9. **एगत्तेण साईया, अप्पजवसिया वि य।**
पुहुत्तेण अणाईया, अप्पजवसिया वि य।। -36/65
एक मुक्त जीव की अपेक्षा से सिद्ध सादि अनन्त हैं और बहुत से मुक्त जीवों की अपेक्षा से वे अनादि अनन्त भी हैं।

10. **अरूविणो जीवघणा, नाणदंसणसन्निया।**
अउलं सुहं संपत्ता, उवमा जस्स नत्थि उ।। -36/66
सिद्ध अरूपी हैं, घनरूप (सघन) जीव हैं, ज्ञान, दर्शन से सम्पन्न हैं। जिसकी कोई उपमा नहीं है, ऐसा अतुल सुख उन्हें प्राप्त है।

11. **संसारत्था उ जे जीवा, दुविहा ते विसाहिया।**
तसा य थावरा चेव, थावरा तिविहा तहिं।। -36/68
जो संसारस्थ जीव हैं, उनके दो भेद हैं- त्रस और स्थावर। उनमें स्थावर जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं।

12. **पुढवी आउजीवा य, तहेव य वणस्सई।** -36/69
स्थावर जीव तीन तरह के हैं- पृथ्वीरूप, जलरूप और वनस्पति रूप।

13. **तेऊ वाऊ य बोद्धव्वा, उराला य तसा तहा।** -36/107
तेजस्काय, वायुकाय और उदार (एकेन्द्रिय त्रसों की अपेक्षा स्थूल द्वीन्द्रिय आदि), ये तीन त्रस काय हैं। (तेजस् और वायु में चलन क्रिया देखकर इन्हें त्रस कहा जाता है जबकि ये भी स्थावर ही हैं)

14. **ओराला तसा जे उ, चउहा ते पकित्तिया।**
बेइन्दिय-तेइन्दिय चउरो-पंचिन्दिया चेव।। -36/126
उदार त्रस चार प्रकार के कहे गये हैं- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।

15. **पंचिन्दिया उ जे जीवा, चउव्विहा ते वियाहिया।**
नेरइया तिरिक्खा य, मणुया देवा य आहिया।। -36/155
जो पंचेन्द्रिय जीव हैं, वे चार प्रकार के कहे गये हैं- नैरयिक, तिर्यन्च, मनुष्य और देव।

16. **इह जीवमजीवे य, सोच्चा सद्दहिऊण य।**
सव्वनयाण अणुमए रमेज्जा संजमे मुणी।। -36/249
जीव अजीव की व्याख्या सुनकर उस पर श्रद्धा करके सभी नयों से अनुमत संयम में मुनि रमण करे।

17. **तओ बहूणि वासाणि, सामण्णमणुपालिया।**
इमेण कमजोगेण, अप्पाणं संलिहे मुणी। -36/250
तदन्तर अनेक वर्षों तक श्रामण्य का पालन करके मुनि क्रम से आत्मा की संलेखना (विकारों से क्षीणता) करे।

18. **मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा हु हिंसगा।**
इय जे मरन्ति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोहि।।
सम्मद्दंसणरत्ता, अनियाणा सुक्कलेसमोगाढ़ा।
इय जे मरन्ति जीवा, सुलहा तेसिं भवे बोहि।। -36/257, 258
जो जीव अन्त समय में मिथ्यादर्शन में अनुरक्त, निदान से युक्त और हिंसक होकर मरते हैं, उन्हें बोधि बहुत दुर्लभ होती है, लेकिन जो अन्त समय में सम्यग्दर्शन में अनुरक्त, निदान से रहित और शुक्ल लेश्या में प्रविष्ट होकर मरते हैं, उन्हें बोधि सुलभ होती है।

19. **जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेन्ति भावेण।**
अमला असंकिलिट्ठा, ते होन्ति परित्त संसारी।। 36/260
जो जीव अन्तिम समय तक जिनवचन में अनुरक्त हैं, जिन वचनों का भावपूर्ण आचरण करते हैं, वे निर्मल और असंक्लिष्ट होकर परिमित संसार वाले होते हैं।

परिशिष्ट–1

ग्रन्थ की छन्द रचना के कुछ ज्ञातव्य तथ्य

1. हिन्दी की गेय रचनाएँ प्रायः अन्त्यानुप्रास (तुकान्त) के आधार पर ही होती हैं। प्रस्तुत रचना में भी इसकी परिपालना पूर्णरूप से की गई है। छन्द की प्रथम और द्वितीय पंक्ति में अन्त्यानुप्रास है और तीसरी पंक्ति का अन्त्यानुप्रास पिछले छन्द की तीसरी पंक्ति से बिठाया गया है। छन्द की तीसरी पंक्ति के अन्त्यानुप्रास के प्रयोग में निम्नलिखित बातें जाननी आवश्यक है, ताकि पाठकों को अर्थ ग्रहण में कोई भ्रम न हों–

   (a) तीसरी पंक्ति के अंतिम शब्द में योजक चिह्न के बाद 'लो' शब्द 'लेने' की क्रिया के आज्ञार्थक रूप में प्रयोग किया गया है।

   (b) कुछ शब्द जो साधारणतया गद्य में प्रयोग नहीं किये जाते हैं, उन्हें तीसरी पंक्ति के अंतिम शब्द के रूप में तुकान्त की लयात्मकता बनाये रखने के लिए गढ़ा गया है, फिर भी संदर्भ के अनुसार उनका अर्थ समझने में कोई विशेष बाधा नहीं आती है। उदाहरण के रूप में प्रयोग में आये कुछ शब्द हैं–

प्रयोग में लिये गये शब्द	**सांकेतिक अर्थ के सन्दर्भ में**
करा–लो	'करलो' अथवा 'करने' के अर्थ में।
गिना–लो	'गिनलो' अथवा 'गिनने' के अर्थ में।
कहा–लो	'कहते हैं' या 'ऐसा कह सकते है' के अर्थ में।
चालौ	'चलने' 'आगे बढ़ने' या 'उसी के अनुसार करने' के अर्थ में।
टाळौ	'टालने', 'नही करने', 'नही चलने', 'दूर करने', या 'नही मानने' के अर्थ में।
पालौ	'पालन करने' के अर्थ में।
पा–लो	'प्राप्त करने' के अर्थ में।
प्रतिपालौ	'पालन', 'रक्षण', 'प्रतिपोषण' या 'जिज्ञासा तृप्ति' के अर्थ में।
जमा–लो	'बिठालो' या 'मन में स्थिर' करने के अर्थ में।
समझा–लो	'समझने' के अर्थ में।
सिखला–लो	'सीखने' के अर्थ में।

3. जैन आगमों में जैन दर्शन की प्ररूपणा में अनेकानेक पारिभाषिक शब्द आये हैं। सामान्य शब्द-कोशों से उनका अलग विशिष्ट अर्थ होता है एवं उनके पर्यायवाची शब्द भी नगण्य ही होते हैं। इस दृष्टि से जैन आगम ग्रन्थों को हिन्दी पद्य में गेय रूप देने में अनेक बाधाएँ आती हैं, विशेषकर छन्द में अन्त्यानुप्रास और लयात्मकता को लेकर। सूत्र के अर्थ को पद्य में समाहित करने के लिए उन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अपरिहार्य होता है, जिसके कारण लय में कहीं-कहीं व्यवधान आना भी स्वाभाविक है। अभ्यास के साथ एक गायक इसका समाधान अपनी लय में पा लेता है।

परिशिष्ट-2

सन्दर्भ ग्रन्थ

पद्य-रचना एवं सूक्ति संकलन में निम्नलिखित ग्रन्थों से सहायता ली गई है-

(1) उत्तराध्ययन सूत्र (मूल, अन्वयार्थ एवं विवेचन)
(आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज)
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार, जयपुर

(2) उत्तराध्ययन सूत्र (मूल, अनुवाद एवं विवेचन)
(प्रधान सम्पादक-युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी)
श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, (राज.)

(3) उत्तरज्झयणाणि
(संपादकः विवेचक- आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी)
जैन विश्वभारती, लाडनूँ (राज.)

भगवान् महावीर का अन्तिम उपदेश 'उत्तराध्ययन सूत्र' धर्म-कथाओं, आध्यात्मिक-उपदेशों एवं दार्शनिक सिद्धान्तों की त्रिवेणी है। इसे महावीर वाणी का प्रतिनिधि सूत्र कह सकते हैं। जैनागमों में उत्तराध्ययन सूत्र सर्वाधिक प्रिय आगम है, जिसके साक्ष्य हैं, इस पर लिखे गये विशाल व्याख्या-ग्रन्थ। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश तथा लोक भाषाओं में आज तक जितने अनुवाद और व्याख्या-ग्रन्थ, गद्य में अथवा पद्य में, उत्तराध्ययन सूत्र पर प्रस्तुत किये गये हैं, उतने अन्य किसी जैनागम पर नहीं। उत्तराध्ययन सूत्र पर प्रस्तुत गीति-काव्य भी उसी श्रृंखला की एक कड़ी है जो मूल को स्पर्श करती हुई न तो अधिक विस्तार में है और न ही अधिक संक्षेप में। गेय शैली में सरल भाषा में पद्यान्तरण एक अभिनव प्रयास है जो धर्मजिज्ञासु पाठकों को प्रभु की अन्तिम देशना के आध्यात्मिक रस से परितृप्त करेगा, ऐसी आशा है।